॥ णमो सुअस्स ॥

जैनशास्त्रमाला—द्वितीयं रत्नम्

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

संस्कृतच्छाया-पदार्थान्वय-मूलार्थोपेतं

गणपतिगुणप्रकाशिका हिन्दी-भाषा-टीकासहितं च

अनुवादक

जैनधर्मदिवाकर, जैनागमरत्नाकर, साहित्यरत्न, जैनमुनि

श्री श्री श्री १००८ उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज

पञ्जाबी

प्रकाशक

खज़ानचीराम जैन

जैन शास्त्रमाला कार्यालय

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

प्रथमावृत्ति १०००] [मूल्य लागतमात्र २)

महावीराब्द २४६२ विक्रमाब्द १९९३ ईसवी सन् १९३६

प्रकाशक
लाला खज़ानचीराम जैन,
संयोजक तथा प्रबंधक,
जैनशास्त्रमाला कार्यालय,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

मुद्रक
लाला खज़ानचीराम जैन,
मैनेजर, मनोहर इलैक्ट्रिक प्रेस,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर

प्रस्तावना



अनादि संसार-चक्र में परिभ्रमण करती हुई आत्मा, अपने पुण्योदय से, सभी इच्छानुकूल पदार्थों की प्राप्ति कर सकती है। सांसारिक सुखों को उपलब्ध कराने वाले पदार्थ भी क्षण-भंगुर होते हैं, अतः शास्त्रकारों ने उन पदार्थों से प्राप्त होने वाले सुखों को भी क्षण-भंगुर बताया है। क्योंकि जब पुद्गल द्रव्य ही क्षण-भंगुर हैं, तो उनसे उपलब्ध होने वाले सुख चिरस्थायी कैसे हो सकते हैं! यही कारण है कि सांसारिक आत्माएँ, सांसारिक सुखों के मिल जाने पर भी, आत्मिक सुखों से वंचित होकर दुखी हो रही हैं। यदि आप संसार के विशाल चित्र-पट पर विवेक-पूर्ण एवं विशाल दृष्टि डालें, तो आपको विदित होजाएगा कि सांसारिक आत्माएँ किस प्रकार दुःखों से उत्पीड़ित होकर भयंकर आर्त्तनाद कर रही हैं।

मिथ्यात्वोदय से इन आत्माओं में पुनः पुनः मिथ्या-संकल्प उदय होते रहते हैं। वे वास्तविक सुखों के स्थान पर क्षण-भंगुर सुखों की खोज में ही समय व्यतीत करती रहती हैं। फिर भी उन्हें शांति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी लिए, वर्तमान युग में, जड़वाद की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के कारण चारों ओर से अशांति की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। धर्म से पराङ्मुख हो जाने से मानसिक तथा शारीरिक दशा भी शोचनीय होती जारही है। बहुत सी आत्माएँ दुःखदायी घटनाओं के घट जाने के कारण अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ ही नष्ट कर रही हैं। संपूर्ण सामग्री के मिल जाने पर भी उनके चित्त को शांति नहीं।

जब हम इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हैं, तो हम आगमों

के उपदेशों एवं अनुभवों से इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि आत्मिक शांति के विना बाह्य पदार्थों से कभी भी शांति-लाभ नहीं कर सकते ।

इस समय प्रत्येक आत्मा आत्मिक शांति के विना पौद्गलिक पदार्थों से शांति प्राप्त करने की धुन में लगी हुई है। इसी बड़ी भारी भूल के कारण वह दुःख में फँसी हुई है ।

जब हम 'सिंहावलोकन न्याय' से अपने पूर्वजों के इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं, तो हमें पता चलता है कि आज कल के सुख-साधनों के प्रायः न होने पर भी उनका जीवन सुखमय था । क्योंकि उनके हृदयों पर सदाचार की छाप बैठी हुई थी । वे अपने जीवन को सदाचार से विभूषित करते थे, न कि नाना प्रकार के शृंगारों से । वास्तव में वे आत्मिक शांति के ही इच्छुक थे । यही कारण था कि उनका जीवन सुखमय था । वे आज कल की भाँति आत्मिक शांति से रहित बाह्य शांति के अन्वेषक नहीं थे ।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि आत्मिक शांति किस प्रकार उपलब्ध हो सकती है ? इसका उत्तर यही है कि सर्वज्ञोक्त शास्त्रों का स्वाध्याय एवं पवित्र आत्माओं का संसर्ग आत्मिक शांति की प्राप्ति के लिए परम आवश्यक है। स्वाध्याय से आत्म-विकास होने लगता है और जीव, अजीव का भली भाँति निर्णय होजाता है, जिससे कि आत्मा सम्यग्-दर्शन एवं पवित्र चरित्र की आराधना में प्रयत्नशील होने लगती है । इसी आत्मिक शांति की प्राप्ति के लिए राजा, महाराजा, बड़े बड़े धनी, मानी पुरुष भी अपने पौद्गलिक सुखों का परित्याग कर आत्मिक शांति की खोज में लग गए । क्योंकि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने, आत्मिक शांति की उपलब्धि के लिए, मुख्यतया दो ही साधन प्रतिपादन किए हैं—विद्या और चरित्र। पुरुष विद्या—ज्ञान—के द्वारा प्रत्येक पदार्थ के स्वरूप को भली प्रकार जान सकता है और चरित्र के द्वारा अपने आत्मा को अलंकृत कर सकता है, जिससे कि वह निर्वाण के अक्षय सुखों का आस्वादन कर सकता है ।

जनता को उक्त दोनों अमूल्य रत्नों की प्राप्ति हो, इसी आशय से प्रेरित

होकर यह नवाँ अंगशास्त्र हिंदी अनुवाद सहित आपके संमुख उपस्थित किया जा रहा है।

द्वादशांग शास्त्रों में अनुत्तरोपपातिक शास्त्र नवाँ अंग है। इस शास्त्र में उन्हीं पवित्र आत्माओं की संक्षिप्त जीवनी का दिग्दर्शन कराया गया है, जिन्होंने सांसारिक सुखों को छोड़कर ज्ञानपूर्वक चारित्र (तप) की आराधना की है। किंतु आयु स्वल्प होने के कारण वे निर्वाण-पद तो न प्राप्त कर सके, किंतु अनुत्तर विमानों में जा उत्पन्न हुए। और विशिष्ट अवधि ज्ञान द्वारा उनका समय आत्मान्वेषण में ही व्यतीत हो रहा है। इसी कारण वे एक जन्म और ग्रहण करके निर्वाण-पद की प्राप्ति अवश्य करेंगे।

पाठक गण! प्रस्तुत शास्त्र के तृतीय वर्ग में वर्णन किए हुए धन्य अनगार के चरित्र को ध्यानपूर्वक पढ़िएगा, जिससे कि आपको यह भली भाँति विदित हो जाएगा कि धन्यकुमार ने, किस प्रकार, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के वचनामृत का पान कर, सांसारिक सुखों को छोड़कर, केवल निर्वाण-पद को ही अपना ध्येय बना, तप-द्वारा अपने शरीर को अलंकृत किया था।

पाठक गण, इस चरित्र के अध्ययन से तीन शिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हैं:—

१—गुणी आत्माओं का गुणानुवाद करना, जैसे—धन्य अनगार के गुण श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जनता में प्रकट किए। इस शिक्षा से प्रत्येक आत्मा को गुणी जनों का गुणानुवाद करने की शिक्षा मिलती है।

२—महाराजा श्रेणिक ने जब धन्य अनगार के गुण श्री भगवान् के मुखारविंद से सुने, तब वह स्वयं उनके दर्शन कर उनकी स्तुति करने लगा। इस कथन से यह शिक्षा मिलती है कि यथार्थ गुणानुवाद ही होना चाहिए, न कि काल्पनिक। क्योंकि जो यथार्थ गुणानुवाद होता है, वह प्रत्येक आत्मा को गुणों की ओर आकृष्ट करता है। परंतु जो काल्पनिक गुणानुवाद होता है, वह उपहास्य हो जाता है।

३—जिस प्रकार धन्य अनगार ने अपनी प्रतिज्ञा का उत्साहपूर्वक पालन किया, जिससे कि वे अपने ध्येय की प्राप्ति में सफल हो सके, इसी

प्रकार प्रत्येक आत्मा को अपने ध्येय की प्राप्ति में प्रयत्न करना चाहिए। ध्येय की प्राप्ति में चाहे कैसे भी कष्टों का सामना करना पड़ जाए, किंतु अपने प्रण से कभी भी विचलित नहीं होना चाहिए।

इस सूत्र के अध्ययन से भली भाँति उक्त तीन शिक्षाएँ मिल जाती हैं। अतः मुमुक्षु वर्ग को इस शास्त्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। यद्यपि अन्य अंग शास्त्रों की अपेक्षा वर्तमान काल में प्रस्तुत शास्त्र की श्लोक-संख्या स्वल्प है, किंतु इस शास्त्र का प्रत्येक पद शिक्षा से ओत-प्रोत है। अतः जब पाठक वर्ग उपयोगपूर्वक इसका स्वाध्याय करेंगे, तब वे स्वयं ही अनुलोम होने लगेंगे।

इस समय बहुत-सी मूर्ख आत्माएँ स्वाध्याय से शून्य एवं सदाचारियों की संगति न होने के कारण आचार से भ्रष्ट हो रही हैं। जब वे इस प्रकार आगमों का स्वाध्याय करेंगी तथा सर्वज्ञ-प्रणीत शास्त्रों में आए हुए चरित्रानुवाद से संबंध रखने वाले पवित्र महर्षियों की जीवनियों पर दृष्टिपात करेंगी, तो आशा है कि वे आत्माएँ भी 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' के सिद्धांत पर आरूढ़ होकर निर्वाण-पद की अधिकारी बन सकेंगी, जिससे कि सादि अनंत पद एवं अनंत और अक्षय सुख की प्राप्ति हो सकेगी।

आत्माराम

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

विषय-सूची



प्रथम वर्ग

द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

प्रकार प्रत्येक आत्मा को अपने ध्येय की प्राप्ति में प्रयत्न करना चाहिए। ध्येय की प्राप्ति में चाहे कैसे भी कष्टों का सामना करना पड़ जाए, किंतु अपने प्रण से कभी भी विचलित नहीं होना चाहिए।

इस सूत्र के अध्ययन से भली भाँति उक्त तीन शिक्षाएँ मिल जाती हैं। अतः मुमुक्षु वर्ग को इस शास्त्र का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। यद्यपि अन्य अंग शास्त्रों की अपेक्षा वर्तमान काल में प्रस्तुत शास्त्र की श्लोक-संख्या स्वल्प है, किंतु इस शास्त्र का प्रत्येक पद शिक्षा से ओत-प्रोत है। अतः जब पाठक वर्ग उपयोगपूर्वक इसका स्वाध्याय करेंगे, तब वे स्वयं ही अनुलोम होने लगेंगे।

इस समय बहुत-सी मूर्ख आत्माएँ स्वाध्याय से शून्य एवं सदाचारियों की संगति न होने के कारण आचार से भ्रष्ट हो रही हैं। जब वे इस प्रकार आगमों का स्वाध्याय करेंगी तथा सर्वज्ञ-प्रणीत शास्त्रों में आए हुए चरित्रानुवाद से संबंध रखने वाले पवित्र महर्षियों की जीवनियों पर दृष्टिपात करेंगी, तो आशा है कि वे आत्माएँ भी 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' के सिद्धांत पर आरूढ़ होकर निर्वाण-पद की अधिकारी बन सकेंगी, जिससे कि सादि अनंत पद एवं अनंत और अक्षय सुख की प्राप्ति हो सकेगी।

आत्माराम

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

विषय-सूची



प्रथम वर्ग

द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

सूत्र और सूत्रांशानुक्रमणिका

प्रथम वर्ग

द्वितीय वर्ग

तृतीय वर्ग

धन्यवाद

पाठकों के सम्मुख अब मुझे इस जैनशास्त्रमाला का द्वितीय अंक उपस्थित करते हुए बड़ा ही हर्ष होता है। इसके पूर्व 'दशाश्रुतस्कन्धसूत्र' आपकी सेवा में उपस्थित किया जा चुका है। उसमें हमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, उसका अनुभव हमारे पाठक हम से अधिक कर सकते हैं। श्री वीरप्रभु की परम कृपा से हमारा कार्य आगे भी उसी साहस और उत्साह के साथ चल रहा है। श्री श्री श्री १००८ श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज ने जिस उदारता और धर्मस्नेह से इस महान् कार्य को अपने हाथों में लिया था, उसी उदारता और धर्मस्नेह से उसे निभा रहे हैं। फलस्वरूप अब 'अनुत्तरोववाई दशासूत्र' आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें भी जैसा कि हमारा पूर्व से ही निश्चय था, हमने दशाश्रुतस्कन्धसूत्र के समान प्राकृतमूल, नीचे संस्कृतच्छाया, प्रत्येक शब्द का अर्थ, मूलार्थ और अन्त में विस्तृतार्थ दिया है। छपाई और शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जहां तक मुझ से बन सका है, मैंने इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने का यत्न किया है। अपनी ओर से कोई त्रुटि नहीं रक्खी।

मैं अपने सहायकों का इतना कृतज्ञ हूँ कि मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

सब से पहले मैं गुरुदेव श्री श्री श्री १००८ श्री जैनधर्मदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम जी महाराज का

धन्यवाद करता हूँ, जो महान् पवित्र शास्त्रोद्धार में हमें निरन्तर सहायता दे रहे हैं। ३२ शास्त्रों के अनुवाद का बड़ा भारी बोझ उठाना यह उन्हीं की वज्रमयी लेखिनी का काम है। उन्होंने मुझे इस काम में पूरी तरह से सहायता देने की कृपा की है। किसी भाग में भी त्रुटि नहीं रक्खी। जिस शीघ्रता और निपुणता से शास्त्रों के अनुवाद का कार्य चल रहा है, उसे समझने वाले ही समझते हैं। आप हमारी पंजाबी सम्प्रदाय की साधु समाज में विशेष प्रतिष्ठित हैं। बालब्रह्मचारी और प्रसिद्ध शास्त्रमर्मज्ञ हैं, उपाध्याय आदि उपाधियों से विभूषित और अपनी क्रिया में परम प्रवीण हैं। हमारी प्रभु से यही प्रार्थना है कि आप चिरायु हों, जिससे कि यह पुनीत कार्य सफलतापूर्वक चलता रहे।



श्री श्री श्री १००८ श्री
उपाध्याय श्री आत्माराम जी महाराज
(चित्र परिचय के लिये है पूजन के लिए नहीं)

अब मुझे अपने उन बन्धुओं का धन्यवाद करना है, जिन्होंने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया है। यदि हमें धन न मिलता तो हमारे लिए इन शास्त्रों की गन्ध तक भी मिलनी सम्भव न होती। हमारा सारा परिश्रम स्वप्नमात्र रह जाता। धन्य जन्म है इन पवित्रात्माओं का, जिन्होंने हमारे मनोरथों को कार्यरूप में परिणत किया है। इन सब महानुभावों का परिचय मैं दशाश्रुतस्कन्धसूत्र अर्थात् इस शास्त्रमाला के प्रथम अंक में 'धन्यवाद' शीर्षक लेख में दे चुका हूँ। किन्तु इतने पर भी मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। मेरा हृदय उनका इतना आभारी है कि वह बार बार उनका धन्यवाद करने के लिये उछल रहा है। उन सज्जनों का पुनः परिचय देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, ताकि हमारी समाज के अन्य महापुरुष भी उनका अनुकरण करके हमारी सहायता करने के लिये प्रोत्साहित हों।

धन्यवाद



पाठकों के सम्मुख अब मुझे इस जैनशास्त्रमाला का द्वितीय अंक उपस्थित करते हुए बड़ा ही हर्ष होता है। इसके पूर्व 'दशाश्रुतस्कन्धसूत्र' आपकी सेवा में उपस्थित किया जा चुका है। उसमें हमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, उसका अनुभव हमारे पाठक हम से अधिक कर सकते हैं। श्री वीरप्रभु की परम कृपा से हमारा कार्य आगे भी उसी साहस और उत्साह के साथ चल रहा है। श्री श्री श्री १००८ श्री उपाध्याय आत्माराम जी महाराज ने जिस उदारता और धर्मस्नेह से इस महान् कार्य को अपने हाथों में लिया था, उसी उदारता और धर्मस्नेह से उसे निभा रहे हैं। फलस्वरूप अब 'अनुत्तरोववाई दशासूत्र' आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें भी जैसा कि हमारा पूर्व से ही निश्चय था, हमने दशाश्रुतस्कन्धसूत्र के समान प्राकृतमूल, नीचे संस्कृतच्छाया, प्रत्येक शब्द का अर्थ, मूलार्थ और अन्त में विस्तृतार्थ दिया है। छपाई और शुद्धता की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। जहां तक मुझ से बन सका है, मैंने इसे सर्वाङ्गपूर्ण बनाने का यत्न किया है। अपनी ओर से कोई त्रुटि नहीं रक्खी।

मैं अपने सहायकों का इतना कृतज्ञ हूँ कि मैं उन्हें धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता।

सब से पहले मैं गुरुदेव श्री श्री श्री १००८ श्री जैनधर्मदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर उपाध्याय मुनि श्री आत्माराम जी महाराज का

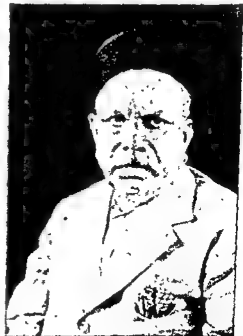


श्रीमान् लाला सोहनलाल जी

सहायक विद्यमान हैं। एक श्रीमान् लाला सोहनलाल जी मैनेजिङ्ग अध्यक्ष फर्म लाला मिट्ठीमल बाबूरामजी जैन बैंकर तथा क्लाथ मर्चेण्ट लुधियाना। आप बड़े उत्साही, धर्मप्रेमी और दानवीर हैं। आपके हाथों धर्मोन्नति के सैकड़ों काम चले और चल रहे हैं। आप जाति के अग्रवाल हैं और नगर में विशेष प्रतिष्ठा रखते हैं। देशहित आपमें कूट कूट कर भरा हुआ है। समाज के बच्चे बच्चे से आपका विशेष प्रेम है।

दूसरे लाला सन्तलाल जी जैन, रईस, मालिक फर्म लाला मल्हीमल सन्तलाल, लुधियाना। आप बड़े धर्मात्मा हैं। प्रकृति बड़ी सरल है। आप भी जाति के अग्रवाल हैं। साधु महात्माओं की संगति में ही आपका अधिक समय व्यतीत होता है। सादगी इतनी बढ़ी चढ़ी है कि कहते नहीं बनता। धनिक होने पर भी मान नाममात्र को नहीं।

अब पांचवें स्थान पर मैं अपने पूज्य चचा श्रीयुत लाला गोपीराम जी, मालिक फर्म कन्हैयालाल बृजलाल, फर्नीचर मर्चेण्ट वा बैंकर, होशियारपुर का अतीव धन्यवाद करता हूँ। आपके पूज्य पिता का



श्रीमान् लाला सन्तलाल जी

सब से पहले मैं वयोवृद्ध श्रीमान् लाला आशाराम जी जैन, अर्ज़ी-नवीस, बैंकर और मालिक फर्म लाला आशाराम जगन्नाथ, सराफ, कसूर का हृदय से धन्यवाद करता हूँ। आप बड़े ही धर्मप्रेमी और भगवद्भक्त हैं। अपने नगर में सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हैं।



श्रीमान् लाला आशाराम जी

इसके पश्चात् कसूरनिवासी धर्ममूर्त्ति स्वर्गीय श्रीमान् बाबू परमानन्द जी वकील की धर्मपत्नी श्रीमती दुर्गादेवी जी का धन्यवाद करना आवश्यक समझता हूँ, जिन्होंने अपने पूज्य पतिदेव की स्मृति में यह दान देने की कृपा की। स्वर्गीय बाबू जी पंजाब की जैनसमाज के एक मुख्य नेता थे। पंजाब की जैन सभा के प्रसिद्ध कार्यकर्ता और बच्चे बच्चे के हितैषी थे। लाहौर के श्री अमर जैन होस्टल की स्थापना का श्रेय आप ही को प्राप्त है। आपकी कसूर में बड़ी प्रतिष्ठा थी। राज्य दरबार में आपको यथेष्ट सम्मान प्राप्त था। वकीलों में आप चोटी के वकील थे। बड़े पवित्रात्मा और सच्चे समाजहितचिन्तक थे।



स्वर्गीय श्रीमान् बाबू परमानन्द जी

लुधियाना में भी हमारे दो परम



श्रीमान् लाला सोहनलाल जी

सहायक विद्यमान हैं। एक श्रीमान् लाला सोहनलाल जी मैनेजिङ्ग अध्यक्ष फर्म लाला मिट्ठीमल बाबूरामजी जैन बैंकर तथा क्लाथ मर्चेण्ट लुधियाना। आप बड़े उत्साही, धर्मप्रेमी और दानवीर हैं। आपके हाथों धर्मोन्नति के सैकड़ों काम चले और चल रहे हैं। आप जाति के अग्रवाल हैं और नगर में विशेष प्रतिष्ठा रखते हैं। देशहित आपमें कूट कूट कर भरा हुआ है। समाज के बच्चे बच्चे से आपका विशेष प्रेम है।

दूसरे लाला सन्तलाल जी जैन, रईस, मालिक फर्म लाला मल्हीमल सन्तलाल, लुधियाना। आप बड़े धर्मात्मा हैं। प्रकृति बड़ी सरल है। आप भी जाति के अग्रवाल हैं। साधु महात्माओं की संगति में ही आपका अधिक समय व्यतीत होता है। सादगी इतनी बढ़ी चढ़ी है कि कहते नहीं बनता। धनिक होने पर भी मान नाममात्र को नहीं।

अब पांचवें स्थान पर मैं अपने पूज्य चचा श्रीयुत लाला गोपीराम जी, मालिक फर्म कन्हैयालाल बृजलाल, फर्नीचर मर्चेण्ट वा बैंकर, होशियारपुर का अतीव धन्यवाद करता हूँ। आपके पूज्य पिता का



श्रीमान् लाला सन्तलाल जी

नाम लाला कन्हैयालाल जी था। आप मेरे पूज्य दादा स्वर्गीय लाला मेहरचन्द्र जी के भतीजे हैं। आप बालब्रह्मचारी हैं। बड़े ही उदार और होशियारपुर की जैनजनता के धनिक और प्रतिष्ठित सज्जनों में से एक हैं। धर्म की बड़ी लगन है। सेवाभाव इतना उच्च है कि निर्धन से निर्धन व्यक्ति के यहाँ भी कोई छोटे से छोटा काम हो तो भाग कर जाते हैं।


श्रीमान् लाला गोपीराम जी

इसके अनन्तर हमारे धन्यवाद के पात्र लाला रोचीशाह जी मालिक फर्म लाला कन्हैयाशाह रोचीशाह जी जैन, क्लाथ मर्चेण्ट, रावलपिण्डी, हैं। मैं इनकी प्रशंसा में कहाँ तक लिखूँ। आपकी शास्त्रश्रद्धा, साधुमहात्माओं के प्रति अनन्य भक्ति और ज्ञान प्रचार के लिए उदारहृदयता देखकर मेरा हृदय गद्गद हो जाता है। आप बड़े धनिक और अपनी बिरादरी में मुख्य स्थान रखते हैं। बड़े उच्च विचारों के धनी हैं। सहानुभूति से ओतप्रोत हैं।


श्रीमान् लाला रोचीशाह जी

गुरु महाराज की कृपा से हमें रावलपिण्डी में एक और भी सहायक मिले। आपका शुभ नाम लाला



श्रीमान् लाला तेजेशाह जी

तेजेशाह जी है। आपको रावलपिण्डी जैन जाति में विशेष सम्मान प्राप्त है। आप वहां के प्रसिद्ध बैंकर हैं। इसके अतिरिक्त आपकी सराफी और बजाजी की दुकानें भी चलती हैं। आप मुख्य व्यापारी हैं। आप बड़े ही सुशील और कोमल प्रकृति हैं। गम्भीर और विचारशील हैं। परम उत्साही और शास्त्रप्रेमी हैं। दान में बड़ी रुचि है। आपका पुण्योदय देखिए, सन्तान भी बड़ी योग्य और पितृभक्त है। उपरिलिखित रावलपिण्डी-निवासी दोनों सज्जनों ने केवल इसी धर्मकार्य में ही अपने हृदय की विशालता का परिचय नहीं दिया अपितु आपके यशस्वी हाथों से अनेक धर्मकार्य सम्पन्न हो चुके हैं।

सात सहायकों का परिचय मैं ऊपर दे चुका हूँ। आठवें स्थान पर अब मेरी अपनी ही बारी आती है। अपने सम्बन्ध में मैं क्या लिखूँ। मैं सकल जैन समाज का एक तुच्छ दास और इस पवित्र कार्य में साहाय्य देने वाले उपरोक्त महापुरुषों का ऋणी हूँ, जिन्होंने मेरे इस उद्देश्य में मेरी हर प्रकार से सहायता की है। मेरे मन में ऐसी शास्त्रमाला के उद्घाटन



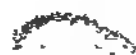
इस शास्त्रमाला का संयोजक और प्रबन्धक
खज़ानचीराम जैन, मैनेजिङ्ग प्रोप्राइटर
फ़र्म—मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास जैन, पुस्तक विक्रेता, लाहौर

गुर्वावली



नायसुओ वद्धमाणो नायसुओ महामुणी ।
लोगे तित्थयरो आसी अपच्छिमो सिवंकरो ॥१॥
सतित्थे ठविओ तेण पढमो अणुसासगो ।
सुहम्मो गणहरो नाम तेअंसी समणच्चिओ ॥२॥
तत्तो पवट्टिओ गच्छो सोहम्मो नाम विस्सुओ ।
परंपराए तत्थासी सूरी चामरसिंघओ ॥३॥
तस्स संतस्स दंतस्स मोतीरामाभिहो मुणी ।
होत्थ सीसो महापन्नो गणिपयविभूसिओ ॥४॥
तस्स पट्टे महाथेरो गणावच्छेअगो गुणी ।
गणपति संनिओ साहू सामण्ण गुणसोहिओ ॥५॥
तस्स सीसो गुरुभत्तो सो जयरामदासओ ।
गणावच्छेअगो अत्थि समो मुत्तोव्व सासणे ॥६॥
तस्स सीसो सच्चसंधो पवट्टगपयंकिओ ।
सालिग्गामो महाभिक्खू पावयणी धुरंधरो ॥७॥
तस्संतेवासिणा एसा अप्पारामेण भिक्खुणा ।
उवज्झाय पयंकेणं भासाटीका समत्थिआ ॥८॥
अणुत्तरोववाइएटीकेयं लोकभासासुवड्ढिआ ।
पढंताणं गुणंताणं वायंताणं पमोइणी ॥९॥

इगूणवीसा नवासीइ विक्कमवासेसु निम्मिआ एसा लुधि-
याणा नामयनयरे अणुत्तरोववाइएटीका समत्ता ।



स्वाध्याय



आत्मा स्वाध्यायद्वारा आत्मविकास कर सकता है, परन्तु स्वाध्याय विधिपूर्वक होना चाहिए। यदि विधिशून्य स्वाध्याय किया जायगा, तो यह आत्मविकास करने में समर्थ नहीं हो सकेगा, क्योंकि विधिपूर्वक किया हुआ स्वाध्याय ही वास्तविक स्वाध्याय है।

स्वाध्याय का फल

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि स्वाध्याय करने से किस फल की प्राप्ति होती है। इसका उत्तर यही है कि—

"सज्झाएणं भंते ! जीवे किं जणइ" "सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवइ" उत्तराध्ययन अ० २९ सू० १८

अर्थात् हे भगवन् ! स्वाध्याय करने से किस फल की प्राप्ति होती है ? भगवान् कहते हैं कि—हे शिष्य ! स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण हो जाते हैं। जब ज्ञानावरणीय कर्म ही क्षीण हो गए, तो आत्मविकास स्वयमेव हो जायगा, जिससे कि आत्मा अपने स्वरूप में प्रविष्ट हो जाने के कारण सब दुःखों से छूट जायगा। क्योंकि—

"सज्झाएवा सव्वदुक्खविमोक्खणे" उत्त० अ० २६ गा० १०

अर्थात् स्वाध्याय सब दुःखों से विमुक्त करने वाला है।

शारीरिक और मानसिक दुःखों का उद्भव अज्ञानता से ही होता है। जब अज्ञानता नष्ट होगई, तब वे दुःख भी स्वयं नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि—

"दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो" उत्त० अ० ३२ का० ८

अर्थात् जिसको मोह नहीं होता, मानों उसने दुःखों का भी नाश कर दिया। अतः सब प्रकार के दुःखों से छूटने के लिए स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

स्वाध्याय किन किन ग्रन्थों का करना चाहिए?

स्वाध्याय उन्हीं ग्रन्थों का करना चाहिए, जो सर्वज्ञप्रणीत, सत्य पदार्थों के प्रदर्शक, ऐहलौकिक और पारलौकिक शिक्षाओं से युक्त, उभयलोकों के हितोपदेष्टा और जिनके स्वाध्याय से तप, क्षमा और अहिंसा आदि तत्त्वों की प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि जिनके स्वाध्याय से आत्मा ज्ञानी और चारित्रयुक्त एवं आदर्शरूप बन सके, वे ही आगम स्वाध्याय करने योग्य हैं। उन्हीं के स्वाध्याय से आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकता है। किंतु प्रत्येक मतावलम्बी अपने आगमों को सर्वज्ञप्रणीत मानता है; फिर इस बात का निर्णय कैसे हो कि अमुक आगम ही सर्वज्ञप्रणीत हैं, अन्य नहीं? इसका उत्तर यही है कि आगमों की परीक्षा के लिए मध्यस्थ भाव से प्रमाण और नय के जानने की आवश्यकता है। जो आगम प्रमाण और नय से बाधित न हो सकें, वे ही प्रमाण-कोटि में माने जा सकते हैं। जैसे कि—कुछ व्यक्तियों ने अपने अपने आगमों को अपौरुषेय (ईश्वरोक्त) माना है, उनका यह कथन प्रमाण-बाधित है। क्योंकि जब ईश्वर अकाय और अशरीरी है, तो भला फिर वह वर्णात्मकरूप छन्द किस प्रकार उच्चारण कर सकता है! क्योंकि शरीर के बिना मुख नहीं होता और मुख के बिना वर्णों का उच्चारण नहीं हो सकता। अतः उनका यह कथन प्रमाण-बाधित सिद्ध हो जाता है। किन्तु जैनागम इस विषय को इस प्रकार प्रमाणपूर्वक सिद्ध करते हैं, जिसे मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं हो सकती और नाही किसी प्रकार की शंका ही उत्पन्न हो सकती है। उदाहरणार्थ—शब्द पौरुषेय है और अर्थ अपौरुषेय है;

अर्थात् शब्दद्वारा सर्वज्ञ आत्माओं ने उन अर्थों का वर्णन किया जो कि अपौरुषेय हैं। कल्पना कीजिए कि सर्वज्ञ आत्मा ने वर्णन किया कि 'आत्मा नित्य है' सो यह शब्द तो पौरुषेय है, किन्तु शब्दों द्वारा जिस द्रव्य का वर्णन किया गया है, वह नित्य (अपौरुषेय) है। इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य के विषय में समझ लेना चाहिए। अतः सिद्ध हुआ कि सर्वज्ञप्रणीत आगमों का ही स्वाध्याय करना चाहिए।

सर्वज्ञप्रणीत आगम कौन कौन से हैं ?

वर्तमान काल में सर्वज्ञप्रणीत और सत्य पदार्थों के उपदेश करने वाले ३२ आगम ही प्रमाण-कोटि में माने जाते हैं। इन आगमों में पदार्थों का वर्णन प्रमाण और नय के आधार पर ही किया गया है। इनके अध्ययन से इन आगमों की सत्यता और इनके प्रणेता सर्वज्ञ या सर्वज्ञ-कल्प स्वतः ही सिद्ध हो जाते हैं।

वर्तमान काल में ३२ आगम इस प्रकार हैं—

"से किं तं सम्मसुअं ? जं इमं अरहंतेहिं भगवंतेहिं उप्पण्ण नाणदंसणधरेहिं तेलुक्क निरिक्खिअ महिअ पूइएहिं तीयपडुप्पण्ण मणागय जाणएहिं सव्वण्णूहिं सव्वदरिसीहिं पणीअं दुवालसंगं गणिपिडगं तं जहा—आयारो १ सूयगडो २ ठाणं ३ समवाओ ४ विवाहपण्णत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइय-दसाओ ९ पण्हवागरणाइं १० विवागसुअं ११ दिट्ठिवाओ १२ इच्चेअं दुवालसंगं गणिपिडगं चोद्दस पुव्विस्स सम्मसुअं अभिण्ण दस पुव्विस्स सम्मसुअं तेणपरं भिण्णेसु भयणा सेतं सम्मसुअं।

नंदीसूत्र (सू० ४०)

१२ अंगशास्त्र, १२ उपांगशास्त्र, ४ मूलशास्त्र, ४ छेदशास्त्र और

१ आवश्यक सूत्र । किन्तु ये ३२ होते हैं। विचार करना चाहिए कि इस समय ११ अंगशास्त्र विद्यमान हैं; १२ वाँ दृष्टिवादाङ्ग-शास्त्र व्यवच्छेद हुआ माना जाता है। अंगशास्त्रों के नाम निम्नलिखित हैं—१ आचारांगशास्त्र, २ सूयगडांगशास्त्र, ३ स्थानांगशास्त्र, ४ समवायांगशास्त्र, ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीशास्त्र), ६ ज्ञाताधर्मकथांगशास्त्र, ७ उपासकदशांगशास्त्र, ८ अंतकृद्दशांगशास्त्र, ९ अनुत्तरौपपातिकशास्त्र, १० प्रश्नव्याकरणशास्त्र, ११ विपाकशास्त्र, १२ दृष्टिवादांगशास्त्र (जो व्यवच्छेद होगया है)।

उपांगशास्त्रों के नाम ये हैं—१ औपपातिकशास्त्र, २ राजप्रश्नीयशास्त्र, ३ जीवाभिगमशास्त्र, ४ प्रज्ञापनाशास्त्र, ५ जंबूद्वीपप्रज्ञप्तिशास्त्र, ६ सूर्यप्रज्ञप्तिशास्त्र, ७ चन्द्रप्रज्ञप्तिशास्त्र, ८ निरयावलिकाओ, ९ कप्पवडिंसियाओ, १० पुप्फियाओ, ११ पुप्फचूलियाओ, १२ वण्हिदसाओ । और चार मूल शास्त्र ये हैं—दशवैकालिकशास्त्र १, उत्तराध्ययनशास्त्र २, नंदीशास्त्र ३, और अनुयोगद्वारशास्त्र ४। चार छेदशास्त्र—व्यवहारशास्त्र १, बृहत्कल्पशास्त्र २, दशाश्रुतस्कन्धशास्त्र ३, निशीथशास्त्र ४, एवं ३१ और ३२ वाँ आवश्यकशास्त्र। इस प्रकार ३२ आगमों की संज्ञा वर्तमान काल में मानी जाती है। किन्तु यह संज्ञा अर्वाचीन प्रतीत होती है। कारण यह है कि नंदीसिद्धांत में सब सिद्धान्तों की चार प्रकार से निम्नलिखित संज्ञाएँ वर्णन की गई हैं। जैसे—अंगशास्त्र, उत्कालिकशास्त्र, कालिकशास्त्र, और आवश्यकशास्त्र। जो उपांगशास्त्र और मूल चार छेदशास्त्र हैं, वे सब कालिक और उत्कालिक शास्त्रों के ही अन्तर्गत लिए गये हैं । देखो—नंदीसिद्धान्त—श्रुतज्ञानविषय।

तथा औपपातिक आदि शास्त्रों में कहीं पर भी यह पाठ नहीं है कि—यह उपांगशास्त्र है। जैसे पाँचवें अंग के आगे के अंगशास्त्रों के आदि में यह पाठ आता है कि, भगवान् जंबूस्वामी जी कहते हैं—"हे भगवन् ! मैंने छठे अंगशास्त्र के अर्थ को तो सुन लिया है, किन्तु सातवें अंगशास्त्र का श्रीश्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने क्या अर्थ वर्णन किया है ?" इत्यादि। किन्तु उपांगशास्त्रों में यह शैली नहीं देखी जाती, और नाही शास्त्रकर्त्ता ने उनकी उपांग संज्ञा कही है। किन्तु केवल निरयावलिकासूत्र के आदि में यह सूत्र अवश्य विद्यमान है। तथा च पाठः—

"तएणं से भगवं जंबूजातसड्ढे जावपज्जुवासमाणे एवं वयासि—उवंगाणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं, एवं उवंगाणं पंचवग्गा पण्णत्ता ? तं जहा निरयावलियाओ १ कप्पवडिंसियाओ २ पुप्फियाओ ३ पुप्फचूलियाओ ४ वण्हिदसाओ ५"—इत्यादि ।

इस पाठ के आगे वर्गों के कतिपय अध्ययनों का वर्णन किया गया है । इस पाठ से यह स्फुट नहीं होसकता कि—ये उपांगों के पाँच वर्ग कौन कौन से अंगशास्त्र के उपांग हैं । यद्यपि पूर्वाचार्यों ने अंग और उपांगों की कल्पना करके अंगों के साथ उपांग जोड़ दिये हैं, किन्तु यह विषय विचारणीय है । कालिक और उत्कालिक संज्ञा स्थानांगादि शास्त्रों में होने से बहुत प्राचीन प्रतीत होती है । किन्तु उपांगादि संज्ञा भी उपादेय ही है । अथवा यह विषय विद्वानों के लिये विचारणीय है । आचार्यवर्य हेमचन्द्र जी ने अपने बनाये 'अभिधानचिंतामणि' नामक कोष में अंगशास्त्रों का नामोल्लेख करते हुए 'केवल उपांगयुक्त अंगशास्त्र हैं' ऐसा कहकर विषय की पूर्ति कर दी है । किन्तु जिस प्रकार अंगशास्त्रों के नामोल्लेख किए हैं, ठीक उसी प्रकार किस किस अंग का कौन कौन सा उपांगशास्त्र है, ऐसा नहीं लिखा है । इससे भी यह कल्पना अर्वाचीन ही सिद्ध होती है । हाँ ! यह अवश्य मानना पड़ेगा कि—यह कल्पना अभयदेव सूरि या मलयगिरि आदि वृत्तिकारों से पूर्व की है । क्योंकि उपांगों के वृत्तिकार वृत्ति की भूमिका में उस उपांग का किस अंग से संबंध है, इस प्रकार का लेख स्फुट रूप से करते हैं । अतः वृत्तिकारों के समय से भी यह कल्पना पूर्व की है; इसलिए यह कल्पना श्वेताम्बर आम्नाय में सर्वत्र प्रमाणित मानी गई है ।

विधिविरुद्ध स्वाध्याय के दोष

जिस प्रकार सातों स्वर और रागों के समय नियत हैं—जिस समय का

जो राग होता है, यदि उसी समय पर गायन किया जाय, तो वह अवश्य आनन्दप्रद होता है, और यदि समयविरुद्ध राग अलापा गया, तब वह सुखदाई नहीं होता; ठीक इसी प्रकार शास्त्रों के स्वाध्याय के विषय में भी जानना चाहिए। और जिस प्रकार विद्यारम्भ संस्कार के पूर्व ही विवाह संस्कार और भोजन के पश्चात् स्नानादि क्रियाएँ सुखप्रद नहीं होतीं, और जिस प्रकार समय का ध्यान न रखते हुए असंबद्ध भाषण करना कलह का उत्पादक माना जाता है, ठीक उसी प्रकार बिना विधि के किया हुआ स्वाध्याय भी लाभदायक नहीं होता। और जिस प्रकार लोग शरीर पर यथास्थान वस्त्र धारण करते हैं— यदि वे बिना विधि के तथा विपरीतांगों में धारण किए जाएँ, तो उपहास के योग्य बन जाते हैं। ठीक इसी प्रकार स्वाध्याय के विषय में भी जानना चाहिए। अतः सिद्ध हुआ कि विधिपूर्वक किया हुआ स्वाध्याय ही समाधिकारक माना जाता है। जिस प्रकार उक्त विषय विधिपूर्वक किए हुए ही 'प्रिय' होते हैं, ठीक उसी प्रकार स्वाध्याय भी विधिपूर्वक किया हुआ ही आत्मविकास का कारण होता है। प्रस्तुत शास्त्र की पहली दशा में उस विषय का स्फुट रूप से वर्णन किया गया है।

स्वाध्याय का समय

स्वाध्याय के लिए जो समय आगमों में बताया गया है, उसी समय स्वाध्याय करना चाहिए, किन्तु अनध्याय काल में स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियों में भी स्वाध्याय के अनध्याय काल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। क्योंकि वे लोग वेद के भी अनध्यायों का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थों का भी अनध्याय काल माना जाता है। किन्तु जैनागमों के सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्यासंयुक्त होने के कारण इनका भी अनध्याय काल आगमों में वर्णित है। यथा—

"दसविधे अंतलिक्खिते असज्झाइए प. तं.—उक्कावाते दिसिदाग्घे, गज्जिते, विज्जुते, निग्घाते, जूयते, जक्खालित्ते, धूमिता महिता, रत उग्घाते। दसविहे ओरालिते, असज्झातिते,

प० तं० अट्ठिमंसं, सोणिते, असुतिसामंते, सुसाणसामंते, चंदोवराते, सूरोवराते, पडणे, रायवुग्गहे, उवसयस्स अंतो ओरालिए सरीरगे।" स्थानांगसूत्र स्थान १० सू० ७१४ ।

(छाया) दशविधं आन्तरीक्षकं अस्वाध्यायिकं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—उल्कापातः, दिग्दाहः, गर्जितं, विद्युत्, निर्घातः, यूपकः, यक्षादीप्तं, धूमिता, महिता, रजउद्घातः । दशविधः औदारिकः अस्वाध्यायिकः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—अस्थिमांसशोणितानि अशुचिसामन्तं श्मशानसामन्तं चन्द्रोपरागः सूरोपरागः पतनं राजविग्रहः उपाश्रयस्यान्ते औदारिकं शरीरकं । तथा च पाठः—

"नो कप्पति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं महापाडिवएहिं सज्झायं करित्तए, तं जहा आसाढ पाडिवए, इन्दमहपाडिवाते कत्तिएपाडिवए, सुगिम्ह पाडिवए, णो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चउहिं सज्झाहिं सज्झायं करेत्तए, तं पडिमाते पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते, कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा चाउक्कालं सज्झायं करेत्तए तं०—पुव्वण्हे अवरण्हे पओसे पच्चुसे ।" स्थानांगसूत्र स्थान ४ उद्देश २ सू. २८५

(छाया) नो कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा चतुर्भिः महाप्रातिपद्भिः स्वाध्यायं कर्तुम् । तद्यथा—आषाढीप्रतिपदः, इन्द्रप्रतिपदः, कार्तिकप्रतिपदः, सुग्रीष्मप्रतिपदः ? नो कल्पते निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां चतुर्भिः सन्ध्याभिः स्वाध्यायं कर्त्तुम् । प्रथमायां पश्चिमायां मध्याह्ने अर्धरात्रौ । कल्पते निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां चतुष्काले स्वाध्यायं कर्त्तुम् । तद्यथा—पूर्वाह्ने, अपराह्ने, प्रदोषे, प्रत्यूषे ।

भावार्थ—आकाश से संबंध रखने वाले कारणों से आकाश संबंधी दश प्रकार से अस्वाध्याय वर्णन किए गए हैं । जैसे उल्कापात (तारापतन); यदि महत् तारापतन हुआ हो, तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए १ । जब तक दिशा रक्त वर्ण की दिखाई पड़ती रहे, तब भी शास्त्रीय

स्वाध्याय नहीं करना चाहिए २। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए। दो प्रहर पर्यन्त बादल गरजने पर ३। एक प्रहर पर्यन्त बिजली चमकने पर ४। दो प्रहर पर्यन्त कड़कने पर ५, अर्थात् बादल के होने या न होने पर आकाश में घोर गर्जना हो, शुक्लपक्ष में तीन दिन पर्यन्त, बालचन्द्र होने पर तीन दिन पर्यन्त। प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया की रात्रि को एक एक प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय न करना चाहिए ६। आकाश में जब तक यक्षाकार दीखता रहे ७। धूमिका श्वेत ८। धूमिका कृष्ण ९। माघ आदि महीनों में धुंध जब तक रहे तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए, विशेषतया वृष्टि होने पर १०। उक्त कारणों के उपस्थित होने पर शास्त्रों का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। किन्तु गर्जना और विद्युत् का अस्वाध्याय चातुर्मास्य में न मानना चाहिए। क्योंकि वह गर्जित और विद्युत्-कार्य ऋतु स्वभाव से ही प्रायः होता है। अतः आर्द्रार्क और स्वाँति अर्क तक अस्वाध्याय नहीं माना जाता। दश प्रकार औदारिक शरीर से संबंध रखने वाले कारणों के उपस्थित हो जाने पर भी अस्वाध्याय हो जाता है। जैसे हड्डी के दिखाई देने पर १। मांस के समीप होने पर २। रुधिर के समीप होने पर ३। वृत्तिकारों ने ६० हाथ के आसपास उक्त चीज़ें पड़ी होने पर अस्वाध्याय माना है। अशुचि (मलमूत्रादि) के समीप होने पर ४। श्मशान के पास होने पर ५। चन्द्रग्रहण के होने पर ८-१२-१६ प्रहर पर्यन्त ६। सूर्यग्रहण होने पर ८-१२-१६ प्रहर पर्यन्त ७। किसी बड़े राजा आदि अधिकारी की मृत्यु हो जाने पर—उनके संस्कार पर्यन्त अथवा अधिकार प्राप्त होने तक शनैः शनैः पढ़ना चाहिए ८। राजाओं के युद्ध स्थान पर ९। उपाश्रय के भीतर पंचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर—जैसे किसी ने कबूतर या चूहे को मार दिया हो तथा १०० हाथ के आसपास मनुष्य आदि का शव पड़ा हो, तब भी स्वाध्याय न करना चाहिए १०। एवं २०॥

चार महाप्रतिपदाओं में भी स्वाध्याय न करना चाहिए। जैसे आषाढ़ शुक्ला पौर्णमासी और श्रावण प्रतिपदा २, आश्विन शुक्ला पौर्णमासी तथा कार्तिक प्रतिपदा ४, कार्तिक शुक्ला पौर्णमासी तथा मार्गशीर्ष प्रतिपदा ६, चैत्र शुक्ला पौर्णमासी और वैशाख प्रतिपदा ८। और सूर्योदय से एक घड़ी पूर्व तथा एक घड़ी पश्चात् एवं सूर्यास्त से एक घड़ी पूर्व तथा एक घड़ी पश्चात्,

मध्याह्न के समय तथा अर्धरात्रि के समय भी पूर्ववत् स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। किन्तु दिन के प्रथम प्रहर और पश्चिम प्रहर तथा रात्रि के प्रथम प्रहर और पिछले प्रहर में अस्वाध्याय काल को छोड़कर अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। इस प्रकार ३२ प्रकार के अस्वाध्याय काल को छोड़कर स्वाध्याय करना चाहिए। तथा निशीथ सूत्र के १९ वें उद्देश में यह पाठ है—

"जे भिक्खू चउसु महापाडिवएसु सज्झायं करेइ करंतं वा साइज्जइ, तं जहा सुगिम्हिए पाडिवाए, आसाढी पाडिवए, भद्दवए पाडिवए, कत्तिए पाडिवए।"

इनका अर्थ भी पूर्ववत् है, किन्तु इस पाठ में भाद्रपद भी ग्रहण किया गया है। सो भाद्रशुक्ला पौर्णमासी और आश्विन कृष्णा प्रतिपदा, इस प्रकार दो दिनों की वृद्धि करने से ३४ अस्वाध्याय काल हो जाते हैं। अतः इनको छोड़कर ही स्वाध्याय करना चाहिए। व्यवहार सूत्र के सातवें उद्देश में स्वाध्याय और अस्वाध्याय काल के विषय में वर्णन करते हुए उत्सर्ग और अपवादमार्ग दोनों का ही अवलम्बन किया गया है। जैसे—

"नो कप्पाति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा वितिकिट्ठाए काले सज्झायं उद्दिसित्तए वा करित्तए ॥१४॥ कप्पाति निग्गंथीणं वितिकिट्ठाए काले सज्झायं उद्दिसित्तए वा करित्तए वा निग्गंथणिस्साए ॥१५॥ नो कप्पाति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा असज्झायं सज्झायं करित्तए ॥१६॥ कप्पाति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा सज्झाइय सज्झायं करित्तए ॥१७॥ नो कप्पाति निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अप्पणो असज्झाइयं करित्तए कप्पति णं अण्णमन्नस्स वायणं दलित्तए ॥१८॥"

इन सूत्रों का भावार्थ केवल इतना ही है कि—साधु या साध्वियों को अकाल में स्वाध्याय न करना चाहिए। किन्तु काल में ही स्वाध्याय करना

चाहिए। यदि परस्पर वाचना चलती हो, तो वाचना की क्रिया कर सकते हैं; अर्थात् वाचना अकाल में भी दे ले सकते हैं। और यदि अपने शरीर से रुधिर आदि बहता हो, तब भी स्वाध्याय नहीं कर सकते, परन्तु उस स्थान को ठीक बाँधकर यदि खून आदि बाहर न बहते हों, तो परस्पर वाचना दे ले सकते हैं। इस प्रकार शुद्धिपूर्वक स्वाध्याय करने में प्रयत्नशील होना चाहिए।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि—अस्वाध्याय मूल सूत्र का होता है या अनुप्रेक्षादि का भी? इसका उत्तर यही है कि—ठाणांग सूत्र के वृत्तिकार अभयदेव सूरि चार महा प्रतिपदाओं की वृत्ति करते समय प्रथम ही यह लिखते हैं:—

"स्वाध्यायो नन्द्यादिसूत्रविषयो वाचनादिः अनुप्रेक्षा तु न निषिध्यते"

इस कथन से सिद्ध हुआ कि केवल संहिता-मात्र का अस्वाध्याय है, अनुप्रेक्षा आदि का नहीं।

अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करने से हानि

अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करने से यही हानि है कि—शास्त्र के देवाधिष्ठित एवं देव-वाणी होने के कारण अशुद्धिपूर्वक पढ़ने से कोई क्षुद्र देव पढ़ने वाले को छल ले या उसे दुःख दे देवे। (एतेषु स्वाध्यायं कुर्वतां क्षुद्रदेवता छलनं करोति इति वृत्तिकारः) जिससे कि लोकों में अत्यंत अपवाद हो जावे। तथा आत्मविराधना और संयमविराधना के होने की भी संभावना की जा सकती है। अथवा—

"सुय णाणंमि अभत्ती लोगविरुद्धं पमत्त छलणा य।
विज्जा साहणवे गुन्न धम्मया एव मा कुणसु ॥१॥"

"श्रुतज्ञानेऽभक्तिः लोकविरुद्धता प्रमत्तछलना च।
विद्यासाधनवैगुण्यधर्मता इति मा कुरु॥"

अर्थात्—विद्यासाधन में असफलता, इत्यादि कारण जानकर, हे शिष्य!

अकाल में स्वाध्याय न करना चाहिए । अत एव सिद्ध हुआ कि अकाल म स्वाध्याय न करना चाहिए। जैसे जो वृत्त अपनी ऋतु आने पर ही फलते और फूलते हैं, वे जनता में समाधि के उत्पन्न करने वाले माने जाते हैं। किन्तु जो वृत्त अकाल में फलते और फूलते हैं, वे देश में दुर्भित्त, मरी, और राज्य-विग्रह (कलह) आदि के उत्पन्न करने वाले माने जाते हैं । इसी प्रकार स्वाध्याय के काल, अकाल विषय में भी जानना चाहिए । कारण यह है कि प्रत्येक कार्य विधिपूर्वक किया हुआ ही सफल होता है। जैसे समय पर सेवन की हुई ओषधि रोग की निवृत्ति और बल की वृद्धि करती है, ठीक इसी प्रकार भक्तिपूर्वक और स्वाध्यायकाल में ही किया हुआ स्वाध्याय कर्मत्तय और शान्ति की प्राप्ति कराता है। अतः—

"उद्देसोपासगस्सनत्थि"

इस वाक्य का स्मरण कर इस विषय को यहीं पर समाप्त किया जाता है। अर्थात् बुद्धिमान् को उपदेश की आवश्यकता नहीं। वह स्वयं ही अपने कृत्यों को समझता है। इसलिए मुमुक्षु जनों को उचित है कि वे शास्त्रीय स्वाध्याय से अपने जीवन को पवित्र बनाकर मोत्त के अधिकारी बनें। क्योंकि शास्त्र का वाक्य है :—

"दोहिं ठाणेहिं अणगारे संपन्ने अणादीयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं वीतिवतेज्जा, तं जहा विज्जाए चेव चरणेण चेव ।" स्थानांगसूत्र, स्थान २ उद्देश १ सूत्र ६३

दो कारणों से संयुक्त भिक्षु अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसाररूपी कान्तार से पार हो जाते हैं, जैसे कि विद्या और आचरण से। इसलिए हमें चाहिए कि देश और धर्म का अभ्युदय करते हुए अनेक भव्य प्राणियों को मोत्त का अधिकारी बनावें, जिससे जनता में सुख और शांति का संचार हो। इत्यलं विद्वद्वर्येषु ।



श्रीः

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

संस्कृतच्छाया-पदार्थान्वय-मूलार्थोपेतं

तपोगुणप्रकाशिकाहिन्दीभाषाटीकासहितं च

प्रथमो वर्गः



तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे....अज्ज-सुहम्मस्स समोसरणं।....परिसा निग्गया जाव....जंवू पज्जुवासति....एवं वयासी जइ णं भंते! समणेणं जाव....संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते नवमस्स णं भंते अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे....आर्य-सुधर्मस्य समवशरणम्।....परिषन्निर्गता यावज्जम्बूः पर्य्युपासति....एवमवादीत् "यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनाष्टमस्याङ्गस्यान्तकृद्दशानामयमर्थः प्रज्ञप्तः, नवमस्य नु भदन्त ! अङ्गस्यानुत्तरोपपातिकदशानां यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः।

पदार्थान्वयः—तेणं—उस कालेणं—काल और तेणं—उस समएणं—समय में रायगिहे—राजगृह नगर में अज्ज-सुहम्मस्स आर्य सुधर्मा समोसरणं—विराजमान



हुए परिसा–परिषद् निग्गया–उनकी धर्म-कथा सुनने के लिये नगर से निकली जाव–यावत्–और कथा सुनकर फिर नगर को वापिस चली गई । इस के अनन्तर जंबू–जम्बू स्वामी पज्जुवासति–अच्छी तरह सेवा करता हुआ एवं–इस प्रकार वयासी–कहने लगा णं–वाक्यालङ्कार के लिये है भंते !–हे भगवन् ! जइ–यदि संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए जाव–और अन्य सब गुणों से परिपूर्ण समणेणं–श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अट्ठमस्स–आठवें अंगस्स–अङ्ग अंतगडदसाणं–अन्त-कृद्-दशा का अयमट्ठे–यह अर्थ पएणत्ते–प्रतिपादन किया है तो फिर भंते !–हे भगवन् ! नवमस्स–नौवें अंगस्स–अंग अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिक दशा का जाव–'नमो त्थु णं' के गुणों से युक्त और संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए श्री भगवान् ने के–कौन-सा अट्ठे–अर्थ पएणत्ते–प्रतिपादन किया है ?

मूलार्थ—उस काल और उस समय में एक राजगृह नगर था । (उसके बाहर गुणशिलक नाम के चैत्य में) आर्य सुधर्मा विराजमान हुए । (यह सुनकर) नगर की परिषद् (उनके पास धर्म-कथा सुनने के लिये) गई (और धर्म सुन-कर नगर को वापिस चली गई) । जम्बू स्वामी अच्छी प्रकार उनकी सेवा करते हुए इस प्रकार कहने लगे "हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने आठवें अङ्ग, अन्तकृद्-दशा का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो हे भगवन् ! नौवें अङ्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा का क्या अर्थ प्रति-पादन किया है ।

टीका—सूत्रों के संख्या-बद्ध क्रम में अङ्कृत्-सूत्र आठवां और अनुत्त-रोपपातिकसूत्र नौवां अङ्ग है । अतः अङ्कृत्-सूत्र के अनन्तर ही इसका आना सिद्ध है । आठवें अङ्ग, अङ्कृत्-सूत्र में उन जीवों का वर्णन किया है, जो मूक केवली हुए हैं अर्थात् जिन्होंने स्वयं तो केवल-ज्ञान की प्राप्ति की किन्तु आयु के क्षीण होने के कारण दूसरी भव्य आत्माओं पर अपने उस ज्ञान को प्रकाश नहीं कर सके । जैसे गजसुकुमार आदि । इस नौवें अङ्ग में उन व्यक्तियों के जीवन का दिग्दर्शन कराया गया है, जो अपनी मनुष्य-जीवन की लीला को समाप्त कर पांच अनुत्तरोपपातिक विमानों में उत्पन्न हुए हैं ।

इस सूत्र की उत्थानिका श्री जम्बू स्वामी से वर्णन की गई है । जब श्री

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष को प्राप्त हो चुके तब जम्बू स्वामी के चित्त में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किस प्रकार उक्त सूत्र का अर्थ वर्णन किया है। उनकी इस जिज्ञासा को देखकर श्री सुधर्म्मा स्वामी निम्न-लिखित रीति से इस सूत्र का विषय वर्णन करते हैं।

इस समय जो एकादश अङ्ग-सूत्र हैं, वे सब श्री सुधर्म्मा स्वामी की वाचना के ही कहे जाते हैं। ऐसा न मानने से कई एक आपत्तियां उपस्थित हो जाती हैं। जैसे–अङ्ग-सूत्र में इस प्रकार के पाठ मिलते हैं कि धन्ना अनगार ने एकादश अङ्गों का अध्ययन किया था। किन्तु इस समय जो अनुत्तरोपपातिक-सूत्र है, उस में मुख्य रूप से धन्ना अनगार का ही विशद अधिकार पाया जाता है। ऐसी अवस्था में यह शङ्का विना समाधान के ही रह जाती है कि उन्होंने नौवें कौन से अङ्ग का अध्ययन किया होगा। क्योंकि प्रस्तुत नौवें अङ्ग में तो धन्ना अनगार का पादोपगमन से अनशन पर्य्यन्त और अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने तक का सब वर्णन दिया गया है। अतः यह बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि यह सब सुधर्म्मा-चार्य की ही वाचना है और वह भी श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण-पद-प्राप्ति के अनन्तर ही की गई है।

इस सूत्र की हस्त-लिखित प्रतियों में निम्न-लिखित पाठ-भेद भी मिलते हैं:–

"तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नगरे होत्था। तस्स णं रायगिहे नाम नयरस्स सेणिए नाम राया होत्था वण्णओ चेलणाए देवी। तत्थ णं रायगिहे नामं नयरे बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसा-भाए गुणसेलए नामं चेइए होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे अज्ज-सुहम्मे नामं थेरे जाव गुणसेलए नामं चेइए तेणेव समोसढे परिसा निग्गया धम्मो कहिओ परिसा पडिगया।"

"तेणं कालेणं तेणं समएणं जंबु जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी"

इनमें से पहला पाठ किसी ग्रन्थ से ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया हुआ प्रतीत होता है। क्योंकि इस सूत्र की रचना तो श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के अनन्तर ही हुई है और श्रेणिक महाराज श्री भगवान् के विद्यमान होते ही पञ्चत्व (मृत्यु) को प्राप्त हो चुके थे। इसलिए असङ्गत होने के कारण यह पाठ निर्मूल है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए 'शास्त्रोद्धार-समिति' ने एक प्रायः

शुद्ध प्रति मुद्रापित की है । इस प्रति में जो मूल सूत्र हैं, वे ठीक प्रतीत होते हैं । इस में सूत्रों के साथ-साथ श्री अभयदेव-सूरि-कृत संस्कृत-विवरण भी है, किन्तु यह बहुत ही संक्षिप्त है । अनुत्तरोपपातिक-दशा शब्द की व्याख्या विवरणकार इस प्रकार करते हैं :—

"अथानुत्तरोपपातिकदशासु किञ्चिद्वयाख्यायते—तत्रानुत्तरेषु–सर्वोत्तमेषु विमानविशेषेषु, उपपातः–जन्म,अनुत्तरोपपातः,स विद्यते येषां तेऽनुत्तरोपपातिकास्तत्प्रतिपादिका दशाः–दशाध्ययनप्रतिबद्धप्रथमवर्गयोगाद्दशाः–ग्रन्थविशेषोऽनुत्तरोपपातिकदशास्तासां च सम्बन्धसूत्रं तद्वयाख्यानं च ज्ञाताधर्म-कथा-प्रथमाध्ययनादवसेयम । शेषं सूत्रमपि कण्ठ्यम्" । इसी प्रकार अन्य कुछ-एक स्थलों का ही विवरण किया गया है । उनमें धन्ना अनगार की उपमा के स्थल पर विशेष है । शेष सूत्रों को सरल जान कर बिना किसी विवरण किये छोड़ दिया गया है । किन्तु ये सूत्र अर्थ की दृष्टि से सुगम होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं ।

पाठकों की सुविधा के लिए इस सूत्र का स्पष्ट और सुगम अर्थ नीचे दिया जाता है :—

चतुर्थ आरे के उस समय जब श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण-पद प्राप्त कर चुके थे, राजगृह नाम का एक नगर था । उस नगर के बाहर एक गुणशैलक नाम चैत्य (उद्यान) था । एक समय उस उद्यान में आर्य सुधर्मा स्वामी पधारे । यह सुनकर उस नगर के लोग उनके मनोहर व्याख्यान सुनने के लिए उन की सेवा में उपस्थित हुए । जब उनका व्याख्यान हो चुका, तब जनता प्रसन्न-चित्त से नगर को वापस चली गई । इसके अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी ने भगवान् सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया "हे भगवन् ! श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष को प्राप्त हो गये हैं । यह हम ने आप के मुखारविन्द से सुन लिया है कि उन्होंने आठवें अङ्ग 'अङ्गकृत्-सूत्र' का अमुक अर्थ प्रतिपादन किया है । अब मेरी जिज्ञासा नौवें अङ्ग के अर्थ जानने की है । कृपा करके वह भी वर्णन कीजिए ।" यह सुनकर श्री सुधर्मा स्वामी जी ने इस से उक्त नौवें अङ्ग का अर्थ कहना प्रारम्भ किया है :—

इस सूत्र में "तेणं कालेणं तेणं समएणं" का "तस्मिन काले तस्मिन् समये" सप्तम्यन्त अनुवाद किया गया है । किन्तु यह दोषाधायक नहीं है । क्योंकि अर्द्ध-

मागधी भाषा में सप्तमी के स्थान पर प्रायः तृतीया का प्रयोग देखा गया है । किसी किसी आचार्य का मत है कि यहां 'णं' वाक्यालङ्कार अर्थ में है और 'ते' प्रथमा का बहुवचन है, जो यहां अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । किन्तु पहले पक्ष का बहुत से आचार्य समर्थन करते हैं। जैसे:—सप्तम्या द्वितीया ॥८।३।१३७॥

इस सूत्र की वृत्ति में आचार्य हेमचन्द्र जी लिखते हैं:—"सप्तम्या स्थाने क्वचिद् द्वितीया भवति । विज्जु ज्जोयं भरइ रत्तिं । आर्षे तृतीयापि दृश्यते । तेणं कालेणं, तेणं समएणं–तस्मिन् काले, तस्मिन् समये इत्यर्थः । प्रथमाया अपि द्वितीया दृश्यते । चउवीसं पि जिणवरा–चतुर्विंशतिरपि जिनवरा इत्यर्थः ।"

जैन सिद्धान्तकौमुदी (अर्द्धमागधी) व्याकरण के कर्ता पण्डित शतावधानि रत्नचन्द्र जी लिखते हैं:—आधारेऽपि ॥२।२।१९॥

क्वचिदधिकरणेऽपि वाच्ये तृतीया स्यात् । तेणं कालेणं तेणं समएणं । जेणामेव सेणिए राया तेणामेव–यस्मिन्नेव तस्मिन्नेवेत्यर्थः। "मज्झेणय गंभीरे" "रायवर कण्णाहिं सद्धिं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु।" इत्यादि दृष्टान्त और व्याकरण के नियमों से सिद्ध हो जाता है कि सप्तमी के अर्थ में तृतीया का प्रयोग शास्त्र-विरुद्ध नहीं है, अपितु शास्त्र-सम्मत ही है ।

इस सूत्र में राजगृह नगर का केवल नाम ही दिया गया है । इसका विशेष वर्णन औपपातिक-सूत्र में आता है । जो व्यक्ति इसके जानने की इच्छा रखते हों, उनको इसके लिये औपपातिक-सूत्र ही देखना चाहिए ।

यहां पर पाठकों को सुधर्म्मा स्वामी के विषय में भी कुछ बता देना ठीक प्रतीत होता है । आप चतुर्दश पूर्वों के पाठी और चार ज्ञानों को धारण करने वाले थे । यद्यपि आप स्थविर-गुणों से पूर्ण 'जिन' तो नहीं थे तथापि 'जिन' के सदृश यथार्थ-वक्ता अवश्य थे । आप स्व-समय (अपने मत) और पर-समय (दूसरों के मत) के पूर्ण ज्ञाता थे । आप श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पट्ट को सुशोभित करते थे । यहां पर उनके विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा । जो उनके विषय में विशेष जानना चाहते हों, उनको 'ज्ञाता-सूत्र' से जानना चाहिए ।

जम्बू स्वामी के उक्त जिज्ञासा-रूप प्रश्न को सुन कर सुधर्म्मा स्वामी इस प्रकार कहने लगेः—

शुद्ध प्रति मुद्रापित की है । इस प्रति में जो मूल सूत्र हैं, वे ठीक प्रतीत होते हैं । इस में सूत्रों के साथ-साथ श्री अभयदेव-सूरि-कृत संस्कृत-विवरण भी है, किन्तु यह बहुत ही संक्षिप्त है । अनुत्तरोपपातिक-दशा शब्द की व्याख्या विवरणकार इस प्रकार करते हैं :—

"अथानुत्तरोपपातिकदशासु किञ्चिद्वयाख्यायते—तत्रानुत्तरेपु–सर्वोत्तमेपु विमानविशेपेपु, उपपातः–जन्म,अनुत्तरोपपातः,स विद्यते येषां तेऽनुत्तरोपपातिकास्तत्प्रतिपादिका दशाः–दशाध्ययनप्रतिवद्धप्रथमवर्गयोगाद्दशाः–ग्रन्थविशेपोऽनुत्तरोपपातिकदशास्तासां च सम्बन्धसूत्रं तद्वयाख्यानं च ज्ञाताधर्म-कथा-प्रथमाध्ययनादवसेयम् । शेपं सूत्रमपि कण्ठ्यम्" । इसी प्रकार अन्य कुछ-एक स्थलों का ही विवरण किया गया है । उनमें धन्ना अनगार की उपमा के स्थल पर विशेष है । शेष सूत्रों को सरल जान कर विना किसी विवरण किये छोड़ दिया गया है । किन्तु ये सूत्र अर्थ की दृष्टि से सुगम होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं ।

पाठकों की सुविधा के लिए इस सूत्र का स्पष्ट और सुगम अर्थ नीचे दिया जाता है :—

चतुर्थ आरे के उस समय जब श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी निर्वाण-पद प्राप्त कर चुके थे, राजगृह नाम का एक नगर था । उस नगर के बाहर एक गुणशैलक नाम चैत्य (उद्यान) था । एक समय उस उद्यान में आर्य सुधर्मा स्वामी पधारे । यह सुनकर उस नगर के लोग उनके मनोहर व्याख्यान सुनने के लिए उन की सेवा में उपस्थित हुए । जब उनका व्याख्यान हो चुका, तब जनता प्रसन्न-चित्त से नगर को वापस चली गई । इसके अनन्तर आर्य जम्बू स्वामी ने भगवान् सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया "हे भगवन् ! श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष को प्राप्त हो गये हैं । यह हम ने आप के मुखारविन्द से सुन लिया है कि उन्होंने आठवें अङ्ग 'अन्तकृत्-सूत्र' का अमुक अर्थ प्रतिपादन किया है । अब मेरी जिज्ञासा नौवें अङ्ग के अर्थ जानने की है । कृपा करके वह भी वर्णन कीजिए ।" यह सुनकर श्री सुधर्मा स्वामी जी ने इस से उक्त नौवें अङ्ग का अर्थ कहना प्रारम्भ किया है :—

इस सूत्र में "तेणं कालेणं तेणं समएणं" का "तस्मिन् काले तस्मिन् समये" सप्तम्यन्त अनुवाद किया गया है । किन्तु यह दोषाधायक नहीं है । क्योंकि अर्द्ध-

मागधी भाषा में सप्तमी के स्थान पर प्रायः तृतीया का प्रयोग देखा गया है । किसी किसी आचार्य का मत है कि यहां 'णं' वाक्यालङ्कार अर्थ में है और 'ते' प्रथमा का बहुवचन है, जो यहां अधिकरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । किन्तु पहले पक्ष का बहुत से आचार्य समर्थन करते हैं । जैसे :—सप्तम्या द्वितीया ॥८।३।१३७॥

इस सूत्र की वृत्ति में आचार्य हेमचन्द्र जी लिखते हैं :—"सप्तम्या स्थाने क्वचिद् द्वितीया भवति । विज्जु ज्जोयं भरइ रत्तिं । आर्षे तृतीयापि दृश्यते । तेणं कालेणं, तेणं समएणं–तस्मिन् काले, तस्मिन् समये इत्यर्थः । प्रथमाया अपि द्वितीया दृश्यते । चउवीसं पि जिणवरा–चतुर्विंशतिरपि जिनवरा इत्यर्थः ।"

जैन सिद्धान्तकौमुदी (अर्द्धमागधी) व्याकरण के कर्ता पण्डित शतावधानि रत्नचन्द्र जी लिखते हैं :—आधारेऽपि ॥२।२।१९॥

क्वचिदधिकरणेऽपि वाच्ये तृतीया स्यात् । तेणं कालेणं तेणं समएणं । जेणामेव सेणिए राया तेणामेव–यस्मिन्नेव तस्मिन्नेवेत्यर्थः । "मज्झेणय गंभीरे" "रायवर कण्णाहिं सद्धिं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हाविंसु ।" इत्यादि दृष्टान्त और व्याकरण के नियमों से सिद्ध हो जाता है कि सप्तमी के अर्थ में तृतीया का प्रयोग शास्त्र-विरुद्ध नहीं है, अपितु शास्त्र-सम्मत ही है ।

इस सूत्र में राजगृह नगर का केवल नाम ही दिया गया है । इसका विशेष वर्णन औपपातिक-सूत्र में आता है । जो व्यक्ति इसके जानने की इच्छा रखते हों, उनको इसके लिये औपपातिक-सूत्र ही देखना चाहिए ।

यहां पर पाठकों को सुधर्म्मा स्वामी के विषय में भी कुछ बता देना ठीक प्रतीत होता है । आप चतुर्दश पूर्वों के पाठी और चार ज्ञानों को धारण करने वाले थे । यद्यपि आप स्थविर-गुणों से पूर्ण 'जिन' तो नहीं थे तथापि 'जिन' के सदृश यथार्थ-वक्ता अवश्य थे । आप स्व-समय (अपने मत) और पर-समय (दूसरों के मत) के पूर्ण ज्ञाता थे । आप श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पट्ट को सुशोभित करते थे । यहां पर उनके विषय में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा । जो उनके विषय में विशेष जानना चाहते हों, उनको 'ज्ञाता-सूत्र' से जानना चाहिए ।

जम्बू स्वामी के उक्त जिज्ञासा-रूप प्रश्न को सुन कर सुधर्म्मा स्वामी इस प्रकार कहने लगे:—

तते णं से सुहम्मे अणगारे जंबुं अणगारं एवं वयासीः—एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तिण्णि वग्गा पण्णत्ता । जति णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तओ वग्गा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—(१) जालि (२) मयालि (३) उवयालि (४) पुरीससेणे य (५) वारिसेणे य (६) दीहदंते य (७) लट्ठदंते य (८) वेहल्ले (९) वेहासे (१०) अभये ति य कुमारे ।

ततः स सुधर्म्मोऽनगारो जम्बुमनगारमेवमवादीत् "एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन नवमस्याङ्गस्य, अनुत्तरोपपातिकदशानां, त्रयो वर्गाः प्रज्ञप्ताः" । "यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन नवमस्याङ्गस्य, अनुत्तरोपपातिक-दशानां, त्रयो वर्गाः प्रज्ञप्ताः, प्रथमस्य नु, भदन्त !, वर्गस्य, अनुत्तरोपपातिक-दशानां, कत्यध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ?" "एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्सम्प्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशानां प्रथमस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— (१)जालिः (२) मयालिः (३) उपजालिः (४) पुरुषषेणः (५) वारिषेणः (६) दीर्घदान्तश्च (७) लष्ट-

दान्तश्च (८) वेहल्लः (९) वेहायसः (१०) अभय इति च कुमाराः ।

पदार्थान्वयः—तते–तदनु णं–वाक्यालङ्कार के लिए है से–वह सुहम्मे–सुधर्म्मा अणगारे–अनगार जंबुं अणगारं–जम्बू अनगार को एवं–इस प्रकार वयासी–कहने लगा जम्बू–हे जम्बू ! एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से समणेणं–श्रमण भगवान् महावीर ने जो जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं नवमस्स–नौवें अंगस्स–अङ्ग अणुत्तरोववाइय-दसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के तिण्णि–तीन वग्गा–वर्ग पण्णत्ता–प्रतिपादन किये हैं। भंते–हे भगवन् ! जति णं–यदि जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् ने नवमस्स–नौवें अंगस्स–अङ्ग अणुत्तरोववाइय-दसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के तओ–तीन वग्गा–वर्ग पण्णत्ता–प्रतिपादन किये हैं तो भंते–हे भगवन् ! पढमस्स–प्रथम वग्गस्स–वर्ग अणुत्तरोववाइय-दसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् ने कइ–कितने अज्झयणा–अध्ययन पण्णत्ता–प्रतिपादन किये हैं ? जंबू–हे जम्बू ! एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए जाव–यावत् समणेणं–श्रमण भगवान् ने अणुत्तरोववाइय-दसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के पढमस्स–प्रथम वग्गस्स–वर्ग के दस–दश अज्झयणा–अध्ययन पण्णत्ता–प्रतिपादन किये हैं तं जहा–जैसे जालि–जालि कुमार मयालि–मयालि कुमार उवयालि–उपजालि कुमार य–और पुरिससेणे–पुरुषसेन कुमार य–और वीरसेणे–वीरसेन कुमार य–और दीहदंते–दीर्घदान्त कुमार य–और लट्ठदंते–लष्टदान्त कुमार य–और वेहल्ले–वेहल्ल कुमार वेहासे–वेहायस कुमार य–और अभये–अभय कुमार इति य–इस प्रकार कुमारे–उक्त दश कुमारों के नाम वर्णन किये हैं ।

मूलार्थ—इसके अनन्तर वह सुधर्म्मा अनगार जम्बू अनगार से कहने लगे "हे जम्बू ! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने नौवें अङ्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा, के तीन वर्ग प्रतिपादन किये हैं"। "हे भगवन् ! मुक्ति को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने यदि नौवें अङ्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा, के तीन वर्ग प्रतिपादन किये हैं तो हे भगवन् ! प्रथम वर्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा, के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये हैं ?" श्री सुधर्म्मा कहने लगे "हे



जम्बू! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री भगवान् ने प्रथम वर्ग, अनुत्तरोपपातिक-दशा, के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, जैसे—जालि कुमार, मयालि कुमार, उपजालि कुमार, पुरुषसेन कुमार, वारिसेन कुमार, दीर्घदांत कुमार, लष्टदांत कुमार, वेहल्ल कुमार, वेहायस कुमार और अभय कुमार। यही प्रथम वर्ग के अध्ययनों के नाम हैं।

टीका—इस सूत्र में इस ग्रन्थ का विषय संक्षेप में बताया गया है और साथ ही इसकी सप्रयोजनता भी सिद्ध की गई है। जम्बू स्वामी ने अत्यन्त उत्कट *जिज्ञासा से सुधर्मा स्वामी से पूछा कि हे भगवन्! श्री श्रमण भगवान् महावीर* स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के कितने वर्ग प्रतिपादन किये हैं? इस पर सुधर्मा अनगार ने बताया कि उक्त सूत्र के तीन वर्ग प्रतिपादन किये गए हैं। फिर जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया कि उन तीन वर्गों में से पहले वर्ग के कितने अध्ययन प्रतिपादन किये गये हैं? उत्तर में सुधर्मा स्वामी ने कहा कि श्री श्रमण भगवान् ने पहले वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं। इनके नाम क्रम से निम्न-लिखित हैं:—

१—जालि कुमार २—मयालि कुमार ३—उपजालि कुमार ४—पुरुषसेन कुमार ५—वारिसेन कुमार ६—दीर्घदान्त कुमार ७—लष्टदान्त कुमार ८—वेहल्ल कुमार ९—वेहायस कुमार और १०—अभय कुमार। यही इन दश अध्ययनों के नाम हैं।

'मयालि कुमार' शब्द के संस्कृत में कई प्रकार के अनुवाद हो सकते हैं। जैसे—मकालि कुमार, मगालि कुमार और मयालि कुमार आदि। क्योंकि "कगचजतदपयवां प्रायो लुक्" ८।१।१७७॥ इस सूत्र से सूत्रोक्त व्यञ्जनों का लोप हो जाता है और फिर अवशिष्ट अकार के स्थान में "अवर्णो य-श्रुतिः" ८।१०।१८०॥ इस सूत्र से यकार हो जाता है। किन्तु 'अर्द्ध-मागधी-कोष' में इसका 'मयालि कुमार' ही अनुवाद किया गया है। अतः यह नाम इसी तरह प्रसिद्ध हो गया है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की सार्थकता या सप्रयोजनता किस प्रकार सिद्ध होती है? उत्तर में कहा जाता है कि जो भव्य व्यक्ति अपने वर्तमान जन्म में सर्वथा कर्मों के क्षय करने में असमर्थ हों, वे इस जन्म के अनन्तर पांच अनुत्तर विमानों के परम-साता-वेदनीय-जनित सुखों का अनुभव

करके निर्वाण-पद की प्राप्ति कर सकते हैं। किन्तु उनका पण्डित-वीर्य पुरुषार्थ किसी भी दशा में निरर्थक नहीं जाता। अतः इस 'सूत्र' की सार्थकता और सम्प्रयोजनता भली भांति सिद्ध है।

इस सूत्र से यह भी सिद्ध होता है कि गुरु-भक्ति से ही श्रुत-ज्ञान की अच्छी तरह से प्राप्ति हो सकती है।

अब जम्बू अनगार सुधर्म्मा स्वामी से फिर प्रश्न करते हैं:—

जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अणुत्तरोव० समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य नु भदन्त ! अध्ययनस्यानुत्तरोपपातिक-दशानां श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

पदार्थान्वयः—भंते-हे भगवन् ! जइ-यदि जाव-यावत् संपत्तेणं-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं-श्रमण भगवान् ने पढमस्स-प्रथम वग्गस्स-वर्ग के दस-दश अज्झयणा-अध्ययन पण्णत्ता-प्रतिपादन किये हैं, तो भंते-हे भगवन् ! पढमस्स-प्रथम अज्झयणस्स-अध्ययन अणुत्तरोव०-अनुत्तरोपपातिक-दशा के जाव-यावत् संपत्तेणं-मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं-श्रमण भगवान् ने के-क्या अट्ठे-अर्थ पण्णत्ते-प्रतिपादन किया है।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने प्रथम वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो हे भगवन् ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ?

टीका—पिछले सूत्रों का प्रश्नोत्तर-क्रम इस सूत्र में भी रक्खा गया है,

क्योंकि यह शैली अत्यन्त रोचक है और इससे परिमित शब्दों में ही अभीष्ट अर्थ समझाया जा सकता है । तदनुसार ही श्री जम्बू स्वामी श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन्! यदि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने–जो 'नमो त्थु णं' में कहे हुए सब गुणों से परिपूर्ण हैं और मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं—प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है? मुझको इसकी जिज्ञासा है कृपा करके यह मुझको सुनाइए ।

इस सूत्र से भी यही सिद्ध किया गया है कि विनय-पूर्वक अध्ययन किया हुआ ज्ञान ही सफल हो सकता है, अन्यथा नहीं । जो शिष्य विनय-पूर्वक गुरु से ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, उसीको गुरु सम्यग्-ज्ञान से परिपूर्ण कर देते हैं । तथा जिसका आत्मा उक्त ज्ञान से परिपूर्ण होता है, वह सहज ही में अन्य आत्माओं के उद्धार करने में समर्थ हो सकता है। अतः सिद्ध यह हुआ कि गुरु से विनय-पूर्वक ही ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । यह सफल होता है ।

अब सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए निम्न-लिखित सूत्र में प्रथम अध्ययन का अर्थ वर्णन करते हैं:—

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे रिद्धित्थिमियसमिद्धे, गुणसिलए चेतिते, सेणिए राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे । जालीकुमारो जहा मेहो। अट्ठट्ठओ दाओ जाव उप्पिं पासा० विहरति। सामी समोसढे सेणिओ णिग्गओ । जहा मेहो तहा जालीवि णिग्गतो। तहेव णिक्खंतो जहा मेहो । एक्कारस अंगाइं अहिज्जति । गुणरयणं तवोकम्मं, एवं जा चेव खंदग-वत्तव्वया सा चेव चिंतणा आपुच्छणा थेरेहिं सद्धिं विपुलं तहेव दुरूहति, नवरं सोलस वासाइं सामन्न-परियागं पाउ-

णित्ता कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम० सोहम्मी-साण जाव आरणच्चुए कप्पे नव य गेवेज्जे विमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीतीवत्तित्ता विजय-विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तते णं ते थेरा भगवंता जालिं अणगारं कालगयं जाणेत्ता परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति २ पत्त-चीवराइं गेण्हंति तहेव ओयरंति । जाव इमे से आयार-भंडए। भंते ! त्ति भगवं गोयमे जाव एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी जालि-नामं अणगारे पगति-भद्दए। से णं जाली अणगारे कालगते कहिं गते ? कहिं उववन्ने ? एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी तहेव जधा खंदयस्स जाव कालं० उड्ढं चंदिम जाव विजए विमाणं देवत्ताए उववन्ने। जालिस्स णं भंते! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोयमा ! बत्तिसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। से णं भंते! ताओ देवलोयाओ आउक्खएणं ३ कहिं गच्छिहिति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झि-हिति, ता एवं जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोव-वाइयदसाणं पढम-वग्गस्स पढम-अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । पढम-वग्गस्स पढम अज्झयणं समत्तम् ।

एवं खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरमभूत्। ऋद्धिस्तिमितसमृद्धं गुणशैलकं चैत्यम् । श्रेणिको

राजा, धारिणी देवी, सिंहः स्वप्ने, जालिकुमारो यथा मेघः। अष्टाष्ट दातानि । यावदुपरि प्रासादे विहरति । स्वामी समवसृतः श्रेणिको निर्गतः । यथा मेघो तथा जालिरपि निर्गतः । तथैव निष्क्रान्तो यथा मेघः । एकादशाङ्गान्यधीते । गुणरत्नं तपः-कर्म, एवं या चैव स्कन्दक-वक्तव्यता सैव चिन्तनाऽऽपृच्छणा। स्थविरैः सार्द्धं विपुलं तथैव दू (आ) रोहति। नवरं षोडश वर्षाणि श्रामण्य-पर्यायं पालयित्वा काल-मासे कालंकृत्वोदूर्ध्वं चन्द्र० सौधर्मैशानयोः आरण्यच्युतयोः कल्पे च ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटादूर्ध्वं व्यतिवर्त्य विजय-विमाने देवतयोत्पन्नः । ततो नु स्थविरा भगवन्तो जालिमनगारं काल-गतं ज्ञात्वा परिनिर्वाणवर्तिनं कायोत्सर्गं कुर्वन्ति, कृत्वा च पात्र-चीवराणि गृह्णन्ति, तथैवावतरन्ति "यावदिमान्यस्याचार-भाण्डकानि"। "भगवन्!" इति भगवान् गोतमो यावदेवमवादीत् "एवं खलु देवानुप्रियाणामन्तेवासी जालिनामाऽनगारः प्रकृति-भद्रकः । स नु जालिरनगारः काल-गतः कुत्र गतः? कुत्रोत्पन्नः ?" "एवं खलु गोतम! ममान्तेवासी तथैव यथा स्कन्दकस्य यावत् काल० ऊर्ध्वं चन्द्रमसो यावद्विजय-विमाने देवतयोत्पन्नः" "जालेर्नु भगवन् ! देवस्य कियान् कालः स्थितिः प्रज्ञप्ता ?" "गोतम ! द्वात्रिंशत्सागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता" "स नु भगवन् ! ततो देवलोकादायुःक्षयेण (स्थितिक्षयेण, भव-क्षयेण) कुत्र गमिष्यति ?" "गोतम ! महाविदेहेवर्षे सेत्स्याति।" तदेवं जम्बु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनाऽनुत्तरोपपातिकदशानां प्रथम-वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । प्रथम-

वर्गस्य प्रथमाध्ययनं समाप्तम्।

पदार्थान्वयः—जंबू !–हे जम्बू! एवं खलु–इस प्रकार निश्चय से (प्रथमाध्ययन का अर्थ है।) तेणं कालेणं–उस काल और तेणं समएणं–उस समय रायगिहे–राजगृह णगरे–नगर था रिद्धि–ऋद्धि–ऊँचे २ भवन आदि तथा त्थिमिय–भय-रहित और समिद्धे–धन-धान्य से युक्त था। गुणसिलए–गुणशैल चेतिते–चैत्य, सेणिए–श्रेणिक राया–राजा धारिणी देवी–धारिणी देवी सीहो सुमिणे–सिंह का स्वप्न जालिकुमारो–जालिकुमार जहा मेहो–जैसे मेघ कुमार अट्ठट्ठओ–आठ २ दाओ–दात (अर्थात् विवाह के साथ लड़की की ओर से आने वाला दहेज) जाव–यावत् उप्पिं पास०–प्रासाद के ऊपर सुख-पूर्वक विहरति–विचरण करता है सामी–श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी समोसढे–सिंहासन के ऊपर विराजमान हो गये सेणिओ–श्रेणिक राजा णिग्गओ–श्री भगवान् की वन्दना के लिए गया जहा–जैसे मेहो–मेघकुमार गया था जालीवि–जालिकुमार भी णिग्गतो–भगवान् की वन्दना के लिए गया तहेव–उसी प्रकार णिक्खंतो–निकला अर्थात् दीक्षित हुआ जहा मेहो–जिस प्रकार मेघकुमार की दीक्षा हुई थी एक्कारस–एकादश अंगाइं–अङ्ग शास्त्रों का अहिज्जति–अध्ययन किया गुणरयणं–गुणरत्न तवोकम्मं–तप कर्म एवं–इसी प्रकार जा चेव–जो कुछ भी खंदग-वत्तव्वया–स्कन्दक मुनि की वक्तव्यता है सा चेव–वही वक्तव्यता जालिकुमार की भी जाननी चाहिए। उसी तरह की चिंतणा–धर्म-चिन्तना आपुच्छणा–श्री भगवान् से अनशन व्रत के धारण करने की आज्ञा लेना। थेरेहिं–स्थविरों के सद्धिं–साथ तहेव–उसी प्रकार विपुलं–विपुलगिरि पर दुरूहति–चढ़ता है। उस पर चढ़ कर नवरं–इतना विशेष है कि सोलस वासाइं–सोलह वर्ष तक सामन्न-परियागं–श्रामण्य-पर्याय का पाउणित्ता–पालन कर कालमासे मृत्यु के अवसर पर कालं किच्चा–काल करके उड्ढं–ऊंचे चंदिम०–चन्द्र से यावत् सोहम्मीसाण–सौधर्म-देवलोक, ईशान-देवलोक जाव–यावत् आरणच्चुए–आरण्य-देवलोक और अच्युत-देवलोक अर्थात् कप्पे–बारह कल्प-देवलोक य–और गेवेज्ज–ग्रैवेयक विमाण–विमान पत्थडे–प्रस्तट उड्ढं–इनसे भी ऊंचे दूरं–और दूर वीतिवतित्ता–व्यतिक्रम करके विजय-विमाणे–विजय-विमान में देवत्ताए–देव-रूप से उववण्णे–उत्पन्न हुआ। तते–इसके अनन्तर णं–वाक्या-

लङ्कार के लिए है ते–वे थेरा भगवंता–स्थविर भगवन्त जालिं–जालि अणगारं–अनगार को काल-गयं–काल-गत हुआ जाणेत्ता–जानकर परिनिव्वाण-वत्तियं–निर्वाण के निमित्त काउस्सग्गं–कायोत्सर्ग करेंति २–करते हैं और फिर कायोत्सर्ग करके पत्त-चीवराइं–पात्र और वस्त्र गेण्हंति–ग्रहण करते हैं तहेव–उसी प्रकार शनैः शनैः उस पर्वत से ओयरंति–उतरते हैं। जाव–यावत् श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सम्मुख आकर कहते हैं कि हे भगवन्! इमे–ये से–उस जालि अनगार के आयार-भंडए–वर्षा-काल आदि में ज्ञान आदि आचार पालने के भण्डोपकरण हैं अर्थात् धर्म-साधन के उपयोगी उपकरण हैं। तब उसी समय भंते! त्ति–हे भगवन्! इस प्रकार कहकर भगवं–भगवान् गोयमे–गौतम स्वामी जाव–यावत् श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास इस प्रकार वयासी–कहने लगे एवं खलु–इस प्रकार निश्चय से देवाणुप्पियाणं–देवानुप्रिय, आपका अंतेवासी–शिष्य जालि नामं–जालि नाम वाला अणगारे–अनगार पगति-भद्दए–प्रकृति से ही भद्र से णं–वह जाली अणगारे जालि अनगार काल-गते–काल को प्राप्त हो कर कहिं गते–कहां गया है? कहिं–कहां उववन्ने–उत्पन्न हुआ है? गोयमा–हे गौतम! एवं खलु–इस प्रकार निश्चय से ममं–मेरा अंतेवासी–शिष्य तहेव–अर्थात् प्रकृति से भद्र जालि कुमार जधा–जिस प्रकार खंदयस्स–स्कन्दक की वक्तव्यता है उसी प्रकार जाव–यावत् काल०–काल करके उड्ढं–ऊंचे चंदिम–चन्द्र से जाव–यावत् विजए–विजय नाम वाले विमाणे–विमान में देवत्ताए–देव-रूप से उववन्ने–उत्पन्न हुआ है। अपने प्रश्न के उचित उत्तर मिलने पर फिर गौतम स्वामी ने श्री भगवान् से पूछा भंते!–हे भगवन्! णं–वाक्यालङ्कार के लिए है जालिस्स–जालि देवस्स–देव की केवतियं–कितने कालं–काल तक ठिती–स्थिति पण्णत्ता–प्रतिपादन की है? फिर उत्तर में श्री भगवान् कहने लगे गोयमा!–हे गौतम! बत्तीस–बत्तीस सागरोवमाइं–सागरोपम की ठिती–स्थिति पण्णत्ता–प्रतिपादन की है। फिर गौतम स्वामी पूछते हैं भंते!–हे भगवन्! से–वह जालिकुमार देव ताओ–उस देवलोगाओ–देव-लोक से आउक्खएणं ३–आयु, स्थिति और देव-भव–(लोक) के क्षय होने पर कहिं–कहां गच्छिहिति–जायगा अर्थात् किस स्थान पर उत्पन्न होगा। भगवान् ने उत्तर दिया गोयमा!–हे गौतम! महाविदेहे वासे–महाविदेह क्षेत्र में सिज्झिहिति–सिद्ध होगा अर्थात् वहां सिद्धि प्राप्त कर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा और निर्वाण-पद

प्राप्त कर सारे शारीरिक और मानसिक दुःखों का अन्त करेगा । ता–इसलिए एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से जंबू !–हे जम्बू ! समणेणं–श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जाव–यावत् संपत्तेणं–जिनको मोक्ष की प्राप्ति हो चुकी है अणुत्तरोववाइय-दसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के पढमवग्गस्स–प्रथम वर्ग के पढम-अज्झयणस्स–प्रथम अध्ययन का अयमट्ठे–यह अर्थ पण्णत्ते–प्रतिपादन किया है । पढम-वग्गस्स–प्रथम वर्ग का पढम-अज्झयणं–प्रथम अध्ययन समत्तं–समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—हे जम्बू ! इस प्रकार श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने प्रतिपादन किया है कि उस काल और उस समय में ऋद्धि, धन, धान्य से युक्त और भय-रहित राजगृह नाम का नगर था । उसके बाहर एक गुणशील नामक चैत्य (उद्यान) था । वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था । उसकी धारिणी नाम की देवी थी । धारिणी देवी ने स्वप्न में सिंह देखा । जिस प्रकार मेघकुमार का जन्म हुआ था, उसी प्रकार जालिकुमार का जन्म हुआ । (जालिकुमार का आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ ।) आठों के घर से उसको बहुत दात (दहेज) आया । इस प्रकार सारे सुखों का अनुभव करता हुआ वह अपने राज-प्रासादों में विचरण करने लगा । इसी समय गुणशीलक चैत्य में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान हुए । वहां श्रेणिक राजा उनकी वन्दना के लिए गया । जिस प्रकार मेघकुमार (श्री श्रमण भगवान् के दर्शनों के लिए) गया था, उसी प्रकार जालिकुमार भी गया । इसके अनन्तर ठीक मेघकुमार के समान ही जालिकुमार भी दीक्षित हो गया । उसने एकादशाङ्ग शास्त्रों का अध्ययन किया । इसी तरह गुणरत्न नामक तप भी किया । शेष जिस प्रकार स्कन्दक संन्यासी की वक्तव्यता है, उसी प्रकार इसके विषय में भी जाननी चाहिए । उसी प्रकार धर्म-चिन्तना, श्री भगवान् से अनशन का विषय पूछना आदि । फिर वह उसी तरह स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर्वत पर चढ़ गया । विशेषता केवल इतनी है कि वह सोलह वर्ष के श्रामण्य-पर्याय का पालन कर मृत्यु के समय के आने पर काल करके चन्द्र से ऊंचे सौधर्मेशान, आरण्याच्युत-कल्प देवलोक और ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटों से भी ऊंचे व्यतिक्रम करके विजय विमान में देव-रूप से उत्पन्न हुआ । तब वे स्थविर भगवान् जालि अनगार को काल-गत हुआ जानकर परिनिर्वाण-प्रत्ययिक कायोत्सर्ग करके तथा जालि अनगार के



वस्त्र और पात्र लेकर उसी प्रकार पर्वत से उतर आए और श्री श्रमण भगवान् महावीर की सेवा में उपस्थित होकर उन्होंने सविनय निवेदन किया कि हे भगवन्! ये जालि अनगार के धर्म-आचार आदि साधन के उपकरण हैं। इसके अनन्तर भगवान् गौतम ने श्री भगवान् से प्रश्न किया "हे भगवन्! भद्र-प्रकृति और विनयी वह आप का शिष्य जालि अनगार मृत्यु के अनन्तर कहां गया? कहां उत्पन्न हुआ?" श्री श्रमण भगवान् ने इसके उत्तर में प्रतिपादन किया "हे गौतम! मेरा अन्तेवासी जालि अनगार चन्द्र से और बारह कल्प देवलोकों से नव ग्रैवेयक विमानों का उल्लङ्घन कर विजय-विमान में देव-रूप से उत्पन्न हुआ है।" गौतम ने फिर प्रश्न किया "हे भगवन्! उस जालि देव की वहां कितनी स्थिति है?" श्री भगवान् ने उत्तर दिया "हे गौतम! जालि देव की वहां बत्तीस सागरोपम स्थिति प्रतिपादन की गई है" गौतम ने फिर पूछा "हे भगवन्! वह जालिदेव उस देवलोक से आयु, भव और स्थिति क्षय होने पर कहां जायगा?" श्री भगवान् ने फिर उत्तर दिया "हे गौतम! तदनन्तर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध-गति प्राप्त करेगा अर्थात् यावत् मानसिक और शारीरिक दुःखों से सर्वथा मुक्त होकर निर्वाण-पद को प्राप्त करेगा" श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। प्रथम वर्ग का प्रथम अध्ययन समाप्त हुआ।

टीका—इस सूत्र में जालिकुमार के विषय में प्रतिपादन किया गया है। यह ध्यान में रखने के योग्य है कि इस अध्ययन में कथित विषय 'ज्ञातासूत्र' के प्रथम अध्ययन के–जिसमें मेघकुमार के विषय में कहा गया है–विषय के समान ही है। अर्थात् 'ज्ञातासूत्र' के प्रथम अध्ययन में जिस प्रकार मेघकुमार के विषय में प्रतिपादन किया गया है, उसी प्रकार इस सूत्र के इस अध्ययन में जालिकुमार के विषय में भी प्रतिपादन किया गया है।

इस सूत्र में सब वर्णन संक्षेप से ही कहा गया है। इसका कारण यही है कि 'ज्ञातासूत्र' में इस राजगृह नगर, श्रेणिक राजा और धारिणी देवी का विस्तृत वर्णन दिया जा चुका है। उस सूत्र की संख्या छठी है और इसकी नवीं। अतः

पहले आए हुए विषय का यहां केवल संकेतमात्र दिया गया है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए सूत्रकार ने यहां संक्षिप्त वर्णन दिया है यह जान लेना चाहिए।

अब शङ्का उपस्थित होती है कि जब मेघकुमार भी जालि अनगार के समान अनुत्तर विमान में ही उत्पन्न हुआ था तो मेघकुमार का वर्णन 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' में क्यों दिया गया ? उत्तर में कहा जाता है कि मेघकुमार का वर्णन छठे अङ्ग में इसलिए किया गया है कि उसमें धर्मयुक्त पुरुषों की शिक्षा-प्रद जीवन-घटनाओं का वर्णन है। उनमें से मेघकुमार के जीवन में भी कितनी ही ऐसी शिक्षाएं वर्णन की गई हैं, जिनके पढ़ने से प्रत्येक व्यक्ति को अत्यन्त लाभ हो सकता है। किन्तु अनुत्तरोपपातिकसूत्र में केवल सम्यक् चरित्र पालन करने का फल बताया गया है। अतः मेघकुमार के चरित्र में विशेपता दिखाने के लिए उसका चरित्र नवें अङ्ग में न देकर छठे ही अङ्ग में दे दिया गया है।

जो व्यक्ति इस सूत्र के अध्ययन के इच्छुक हों, उनको इससे पूर्व 'ज्ञाताधर्म-कथाङ्गसूत्र' के प्रथम अध्ययन का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। यह सूत्र इतना सार-पूर्ण है कि इससे व्याकरण पढ़ने वालों को समासान्त पदों का भली भांति बोध हो सकता है, साहित्य के अध्ययन करने वालों को अलङ्कारों का, इतिहास के जिज्ञासुओं को पचीस सौ वर्ष पहले के भारतवर्ष का, धार्मिक पुरुषों को अनेक धार्मिक शिक्षाओं का, नीति के जिज्ञासुओं को साम, दाम, दण्ड और भेद चारों नीतियों का भली भांति बोध हो सकता है। न केवल इतना ही बल्कि शिल्पी व्यक्तियों को अनेक प्रकार के शिल्प और कलाओं का, काम-शास्त्र के जिज्ञासुओं को तरुणी-प्रति-कर्म और धार्मिक-दीक्षा आदि महोत्सव मनाने वालों को अनेक प्रकार के महोत्सव मनाने का पता लग जाता है। इसी प्रकार इस सूत्र से पुण्यात्माओं को पुण्य और पापात्माओं को पाप का फल भी ज्ञात हो जाता है। पुनर्जन्म न मानने वालों को उसकी सिद्धि के अत्युत्तम प्रमाण इसमें मिल सकते हैं। अध्यापक लोग भी इससे प्राचीन अध्यापन-शैली का एक अत्युत्तम चित्र प्राप्त कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि कोई व्यक्ति जो इस सूत्र का स्वाध्याय करेगा, बिना कुछ प्राप्त किये निराश नहीं जा सकता। अतः प्रत्येक को इसका स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। इसी बात को लक्ष्य में रखते हुए सूत्रकार ने यहां इस विषय का अधिक विस्तार नहीं किया। क्योंकि यदि आकांक्षा रहेगी तो पाठक अवश्य ही उसको पूर्ण करने के लिये उक्त



'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' का अध्ययन करेंगे और उससे उनके ज्ञान-भण्डार में अधिक से अधिक वृद्धि होगी । अतः जिस ग्रन्थ के पढ़ने से सूत्र-सम्बन्धी सब बातों के ज्ञान के साथ कुछ और भी उपलब्ध हो, उसको क्यों न पढ़ा जाय । बुद्धिमान् लोग सदा ऐसे ही कार्य किया करते हैं, जिनमें एक ही क्रिया से दो कार्यों का साधन हो। सारांश यह है कि उपादेय वस्तु का सदा आदर होना चाहिए और उक्त शास्त्र सर्वथा उपादेय है । अतः उसका स्वाध्याय भी अवश्य करना चाहिए ।

यहां पर हस्त-लिखित प्रतियों में उपलब्ध पाठ-भेद भी नहीं दिखाये गये हैं, क्योंकि वे सब 'ज्ञाताधर्मकथाङ्ग' के ही पद हैं ।

अब सूत्रकार शेष अध्ययनों के विषय में कहते हैं :—

एवं सेसाणवि अट्ठण्हं भाणियव्वं, नवरं सत्त धारिणि-सुआ वेहल्ल-वेहासा चेल्लणाए। आइल्लाणं पंचण्हं सोलस वासातिं सामन्न-परियातो, तिण्हं बारस वासातिं दोण्हं पंच वासातिं। आइल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उववायो विजये, वेजयंते, जयंते, अपराजिते, सव्वट्ठ-सिद्धे। दीहदंते सव्वट्ठसिद्धे । उक्कमेणं सेसा। अभओ विजए। सेसं जहा पढमे । अभयस्स णाणत्तं, रायगिहे नगरे, सेणिए राया, नंदा देवी माया, सेसं तहेव । एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइय-दसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते । (सूत्र १)

एवं शेषाणामप्यष्टानां भणितव्यम्, नवरं सप्त धारिणि-सुताः, वेहल्ल-वेहायसौ चेल्लणायाः आदिकानां पञ्चानां षोडश वर्षाणि श्रामण्य-पर्यायम्, त्रयाणां द्वादश वर्षाणि, द्वयोः पञ्च

वर्षाणि । आदिकानां पञ्चानामानुपूर्व्योपपातो विजये, वैजयन्ते, जयन्ते, अपराजिते, सर्वार्थसिद्धे । दीर्घदन्तस्य सर्वार्थसिद्धे । उत्क्रमेण शेषाः । अभयो विजये । शेषं यथा प्रथमस्य। अभयस्य नानात्वं राजगृहं नगरम्, श्रेणिको राजा, नन्दादेवी माता, शेषं तथैव । एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशानां प्रथमस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । (सूत्र १)

पदार्थान्वयः—एवं-इसी प्रकार सेसाणवि-शेष अट्ठण्हं-आठ अध्ययनों का भी वर्णन भाणियव्वं-जानना चाहिए नवरं-विशेष इतना ही है कि सत्त-सात धारिणि-सुश्रा-धारिणी देवी के पुत्र थे और वेहल्ल-वेहासा-वेहल्ल और वेहायस कुमार चेल्लणादेवी के पुत्र थे । आइल्लाणं-आदि के पंचण्हं-पांचों ने सोलस वासाति-सोलह वर्ष का सामन्न-परियातो-श्रामण्य-पर्याय पालन किया और तिण्हं-तीन ने बारस वासाति-बारह वर्षों का संयम-पर्याय पालन किया और दोण्हं-दो ने पंच वासाति-पांच वर्ष का संयम-पर्याय पालन किया था, आइल्लाणं-आदि के पंचण्हं-पांच की आणुपुव्वीए-अनुक्रम से विजये-विजय विमान वेजयंते-वैजयन्त विमान जयंते-जयन्त विमान अपराजिते-अपराजित विमान और सव्वट्ठ-सिद्धे-सर्वार्थसिद्ध विमान में उववायो-उत्पत्ति हुई और उक्कमेणं-उत्क्रम से सेसा-अवशिष्ट कुमारों की उत्पत्ति हुई । किन्तु दीहदंते-दीर्घदन्त भी सव्वट्ठसिद्धे-सर्वार्थ-सिद्ध विमान में और अभओ-अभय कुमार विजए-विजय विमान में ही उत्पन्न हुए । सेसं-शेष अधिकार जहा-जैसे पढमे-प्रथम अर्थात् जालि कुमार के विषय में कहा गया है उसी प्रकार जानना चाहिए। अभयस्स-अभय कुमार की णाणत्तं-विशेषता इतनी ही है कि वह रायगिहे-राजगृह नगरे-नगर में उत्पन्न हुआ था और सेणिए-श्रेणिक राया-राजा (उसका पिता था) तथा नंदा देवी-नन्दादेवी माया-माता थी सेसं-शेष वर्णन तहेव-पूर्ववत् ही जानना चाहिए । जंबू-सुधर्मा स्वामी जी जम्बू स्वामी को सम्बोधित कर कहते हैं "हे जम्बू ! एवं-इस प्रकार खलु-निश्चय से जाव-यावत् संपत्तेणं-मोक्ष को प्राप्त हुए समणणं-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अणुत्तरोववाइयदसाणं-अनुत्तरोपपातिक-दशा के पढमस्स-प्रथम

वग्गस्स–वर्ग का अयमट्ठे–यह अर्थ पण्णत्ते–प्रतिपादन किया है (सूत्र १–पहला सूत्र समाप्त हुआ ।)

मूलार्थ—इसी प्रकार शेष आठ (नौ) अध्ययनों के विषय में भी जानना चाहिए । विशेषता केवल इतनी ही है कि अवशिष्ट कुमारों में से सात धारिणी देवी के पुत्र थे, वेहल्ल और वेहायस कुमार चेल्लणा देवी के पुत्र थे। पहले पांच ने सोलह वर्ष तक, तीन ने बारह वर्ष और दो ने पांच वर्ष तक संयम-पर्याय का पालन किया था । पहले पांच क्रम से विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध विमानों में, दीर्घदन्त सर्वार्थसिद्ध और अभयकुमार और विजय विमान में उत्पन्न हुए और शेष अधिकार जिस प्रकार प्रथम अध्ययन में वर्णन किया गया है उसी प्रकार जानना चाहिए। अभयकुमार के विषय में इतनी विशेषता है कि वह राजगृह नगर में उत्पन्न हुआ था और श्रेणिक राजा तथा नन्दादेवी उसके पिता-माता थे । शेष सब वर्णन पूर्ववत् ही है ।

श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के प्रथम वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। पहला वर्ग समाप्त हुआ ।

टीका—इस सूत्र में प्रथम वर्ग के शेष नौ अध्ययनों का वर्णन किया गया है । इनका विषय भी प्रायः पहले अध्ययन के साथ मिलता-जुलता है। विशेषता केवल इतनी है कि इनमें से सात तो धारिणी देवी के पुत्र थे और वेहल्ल कुमार और वेहायस कुमार चेल्लणा देवी के तथा अभय कुमार नन्दा देवी के पेट से उत्पन्न हुआ था । पहले पांचों ने सोलह वर्ष संयम-पर्याय का पालन किया था, तीन ने बारह वर्ष तक और शेष दो ने पांच वर्ष तक । पहले पांच अनुक्रम से पांच अनुत्तर विमानों में उत्पन्न हुए और पिछले उत्क्रम से पांच अनुत्तर विमानों में । यह इन दश मुनियों के उत्कट संयम-पालन का फल है कि वे एकावतारी होकर उक्त विमानों में उत्पन्न हुए । सिद्ध यह हुआ कि सम्यक् चारित्र पालन करने का सदैव उत्तम फल होता है । उस फल का ही यहां सुचारु-रूप से वर्णन किया गया है । जो भी व्यक्ति सम्यक् चारित्र का आराधन करेगा, वह शुभ फल से कभी भी वञ्चित नहीं रह सकता । अतः यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपादेय है ।

इन नौ अध्ययनों के विषय में हस्त-लिखित प्रतियों में निम्न-लिखित पाठभेद मिलता है—

"एवं सेसाणवि नवण्हं भाणियव्वं नवरं सत्तण्हं धारिणिसुया, विहल्ले विहायसे चेल्लणाअत्तए, अभय नंदाएअत्तइ। आइल्लाणं पंचण्हं सोलस वासाइं सामण्णं परियाओ पाउणित्ता, तिण्हं बारस वासाइं दोण्हं पंच वासाइं। आइल्लाणं पंचण्हं आणुपुव्वीए उववाओ विजए, विजयंते, जयंते, अपराजिए, सव्वट्ठसिद्धे दीहदंते, सव्वट्ठसिद्धे, लट्ठदंते अपराजिए, विहल्ले जयंते, विहायसे विजयंते, अभय विजए। सेसं जहा पढमे तहेव। एवं खलु जंबु ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइय-दसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। इति प्रथम-वर्गः समाप्तः।"

हमने यहां पत्राकार मुद्रित पुस्तक का ही पाठ मूल रूप में रखा है। मुद्रित पुस्तक में जैसे कि पाठकों को हमारे मुद्रित मूल से ज्ञात होगा शेष आठ अध्ययनों के विषय में ही पाठ दिया गया है। किन्तु लिखित प्रतियों में जैसा कि ऊपर दिया गया है पूरे नौ अध्ययनों के विषय में कहा गया है। किन्तु इस में कोई भेद नहीं पड़ता, क्योंकि मुद्रित पुस्तक में भी पहले आठ का वर्णन देकर अन्त में अभय कुमार का भी पृथक् वर्णन दे दिया गया है और लिखित प्रतियों में सब का संग्रह-रूप से ही दिया है। अतः इस में कोई विशेष आपत्ति न देखकर ही हमने मुद्रित पुस्तक का पाठ ही मूल में रखा है।

इस सूत्र से पाठकों को शिक्षा लेनी चाहिए कि वे भी कर्म-विशुद्धि के उपायों का अन्वेषण करें। इस प्रकार श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिक सूत्र के प्रथम-वर्ग का अर्थ प्रतिपादन किया है।

श्री सुधर्म्मा स्वामी के इस प्रकार कथन से उनकी गुरु-भक्ति प्रकट होती है। साथ ही आत्मोद्धतता का परिहार और शास्त्र की सप्रयोजनता भी सिद्ध होती है। जम्बू स्वामी ने उनके इस कथन को सहर्ष स्वीकार किया। इससे इस सूत्र की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है। आप्त-वाक्य सर्वत्र ही प्रामाणिक होते हैं। अतः यह सूत्र भी आप्त-वाक्य होने से निःसन्देह ही प्रमाण-कोटि में है।

प्रथमो वर्गः समाप्तः।

द्वितीयो वर्गः

जति णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं दोच्चस्स वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा—(१) दीहसेणे (२) महासेणे (३) लट्ठदंते य (४) गूढदंते य (५) सुद्धदंते (६) हल्ले (७) दुमे (८) दुमसेणे (९) महादुमसेणे (१०) आहिते सीहे य (११) सीहसेणे य (१२) महासीहसेणे य आहिते (१३) पुन्नसेणे य बोद्धव्वे तेरसमे होति अज्झयणे।

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिकदशानां प्रथमस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः, द्वितीयस्य नु भदन्त ! वर्गस्यानुत्तरोपपातिक-दशानां श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः

प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन द्वितीयस्य वर्गस्यानुत्तरोपपातिक-दशानां त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तद्यथा—(१) दीर्घसेनः (२) महासेनः (३) लष्टदन्तश्च (४) गूढदन्तश्च (५) शुद्धदन्तः (६) हल्लः (७) द्रुमः (८) द्रुमसेनः (९) महाद्रुमसेनश्च (१०) आख्यातः सिंहश्च (११) सिंहसेनश्च (१२) महासिंहसेनश्चाख्यातः (१३) पुण्यसेनश्च बोद्धव्यः। त्रयोदश भवन्त्यध्ययनानि।

पदार्थान्वयः—णं–वाक्यालङ्कार के लिए है भंते–हे भगवन् ! जति–यदि जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् ने अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के पढमस्स–प्रथम वग्गस्स–वर्ग का अयमट्ठे–यह अर्थ पण्णत्ते–प्रतिपादन किया है तो फिर भंते–हे भगवन् ! दोच्चस्स–द्वितीय वग्गस्स–वर्ग अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा का जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् ने के अट्ठे–कौनसा अर्थ पण्णत्ते–प्रतिपादन किया है ? सुधर्म्मा स्वामी कहते हैं कि जंबू–हे जम्बू ! एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् दोच्चस्स–द्वितीय वग्गस्स–वर्ग अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिकदशा के तेरस–तेरह अज्झयणा–अध्ययन पण्णत्ता–प्रतिपादन किये हैं तं०–जैसे–दीहसेणे–दीर्घसेन कुमार महासेणे–महासेन कुमार य–और लट्ठदंते–लष्टदन्त कुमार य–और गूढदंते–गूढदन्त कुमार सुद्धदंते–शुद्धदन्त कुमार हल्ले–हल्ल कुमार दुमे–द्रुम कुमार दुमसेणे–द्रुमसेन कुमार य–और महादुमसेणे–महाद्रुमसेन कुमार आहिये–कथन किया गया है य–और सीहे–सिंह कुमार य–तथा सीहसेणे सिंहसेन कुमार महासीहसेणे–महासिंहसेन कुमार आहिते–प्रतिपादन किया गया है य–और पुन्नसेणे–पुण्यसेन बोद्धव्वे–तेरहवां पुण्यसेन जानना चाहिए। इस प्रकार तेरसमे–तेरह अज्झयणे–अध्ययन होंति–होते हैं।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के प्रथम वर्ग का पूर्वोक्त अर्थ प्रतिपादन किया है तो मोक्ष

को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? श्री सुधर्म्मा स्वामी ने उत्तर दिया कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं जैसे—दीर्घसेन कुमार, महासेन कुमार, लष्टदन्त कुमार, गूढदन्त कुमार, शुद्धदन्त कुमार, हल्ल कुमार, द्रुम कुमार, द्रुमसेन कुमार, महाद्रुमसेन कुमार, सिंह कुमार, सिंहसेन कुमार, महासिंहसेन कुमार और पुण्यसेन कुमार। इस प्रकार द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन होते हैं।

टीका—प्रथम वर्ग की समाप्ति के अनन्तर श्री जम्बू स्वामी जी ने श्री सुधर्मा स्वामी जी से सविनय निवेदन किया कि हे भगवन् ! अनुत्तरोपपातिक सूत्र के प्रथम वर्ग का अर्थ जिस प्रकार श्री श्रमण भगवान् ने प्रतिपादन किया था वह मैंने आपके मुखारविन्द से उपयोग-पूर्वक श्रवण कर लिया है। अब, हे भगवन् ! आप कृपया मुझको बताइए कि मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इस प्रश्न को सुन कर श्री सुधर्मा स्वामी अपने प्रिय शिष्य को सम्बोधित कर कहने लगे कि हे जम्बू ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने उक्त सूत्र के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं। पाठक उनका नाम मूलार्थ और पदार्थान्वय से जान लें।

उक्त कथन से भली भांति सिद्ध होता है कि अपने से बड़ों से जो कुछ भी पूछना हो वह नम्रता से ही पूछना चाहिए। विनय-पूर्वक प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही पूर्णरूप से सफल हो सकता है और सर्वथा विकाश को प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक छात्र को गुरु से शास्त्राध्ययन करते हुए विनय से रहना चाहिए। अन्यथा उसका अध्ययन कभी भी सफल नहीं हो सकता।

सामान्य रूप से द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययनों का नाम सुनकर श्री जम्बू स्वामी विशेष रूप से प्रत्येक अध्ययन के अर्थ जानने की इच्छा से फिर श्री सुधर्मा स्वामी से विनय-पूर्वक पूछते हैं :—

जति णं भंते ! समणंणे जाव संपत्तंणे अणुत्तरोववाइय-दसाणं दोच्चस्स वग्गस्स तेरस अज्झयणा पं०

दोच्च० भंते ! वग्गस्स पढमज्झयणस्स सम० ३ जाव सं० के अट्ठे पं० ? एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे, गुणसिलते चेतिते, सेणिए राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे, जहा जाली तहा जम्मं वालत्तणं कलातो नवरं दीहसेणे कुमारे। सच्चेव वत्तव्वया जहा जालिस्स जाव अंतं काहिति। एवं तेरसवि रायगिहे सेणिओ पिता धारिणी माता । तेरसण्हवि सोलसवासा परियातो, आणुपुव्वीए विजए दोन्नि, वेजयंते दोन्नि, जयंते दोन्नि, अपराजिते दोन्नि, सेसा महादुमसेणमाती पंच सव्वट्ठसिद्धे । एवं खलु जंबू ! समणेणं० अनुत्तरोववाइय-दसाणं दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। मासियाए संलेहणाए दोसुवि वग्गेसु। (सूत्र २)

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिकदशानां द्वितीयस्य वर्गस्य त्रयोदशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, द्वितीयस्य, भदन्त ! वर्गस्य प्रथमाध्ययनस्य श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशैलकं चैत्यम्, श्रेणिको राजा धारिणी देवी, सिंहः स्वप्ने, यथा जालेस्तथैव जन्म, वालत्वं, कला; नवरं दीर्घसेनः कुमारः। सा चैव वक्तव्यता यथा जालेर्यावदन्तं करिष्यति। एवं त्रयोदशापि । राजगृहम्, श्रेणिकः पिता, धारिणी माता, त्रयोदशानामपि षोडश वर्षाणि पर्य्यायः । आनुपूर्व्या विजये

द्वौ, वैजयन्ते द्वौ, जयन्ते द्वौ, अपराजिते द्वौ, शेषा महाद्रुमसेनादयः पञ्च सर्वार्थसिद्धे । एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन० अनुत्तरोपपातिक-दशानां द्वितीयस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । मासिक्या संलेखनया द्वयोरपि वर्गयोः (सूत्र २)

पदार्थान्वयः—भंते–हे भगवन् ! णं–वाक्यालङ्कार के लिए है जति–यदि जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् ने दोच्चस्स–द्वितीय वग्गस्स–वर्ग अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के तेरस–तेरह अज्झयणा–अध्ययन पं०–प्रतिपादन किये हैं, तो भंते–हे भगवन् ! दोच्च०–द्वितीय वग्गस्स–वर्ग के पढमज्झयणस्स–प्रथमाध्ययन का सं०–मोक्ष को प्राप्त हुए सम०३–श्रमण भगवान् महावीर ने के–क्या अट्ठे–अर्थ पं०–प्रतिपादन किया है जंबू–हे जम्बू ! एवं खलु–इस प्रकार निश्चय से तेणं कालेणं–उस काल और तेणं समएणं–उस समय रायगिहे–राजगृह णगरे–नगर गुणसिलते–गुणशैलक चेतिते–चैत्य सेणिए–श्रेणिक राया–राजा धारिणी देवी–और उसकी धारिणी देवी थी । सुमिणे–स्वप्न में सीहो–सिंह का दिखाई देना जहा–जिस प्रकार जाली–जालि कुमार के विषय में कहा गया है तहा–उसी प्रकार जम्मं–जन्म हुआ, उसी प्रकार बालत्तणं–बाल-भाव रहा, उसी प्रकार कलातो–कलाओं का सीखना नवरं–विशेषता इतनी है कि दीहसेणे–दीर्घसेन कुमार इसका नाम रखा गया जहा– जैसी जालिस्स–जालि कुमार की वत्तव्वया–वक्तव्यता थी सच्चेव–दीर्घसेन कुमार की वैसी ही हुई । उसी प्रकार जाव–यावत् अंतं काहिति–अन्त करेगा, एवं इसी प्रकार तेरसवि–सब तेरह कुमारों के अध्ययनों के विषय में जानना चाहिए अर्थात् वे भी रायगिहे–राजगृह नगर में उत्पन्न हुए सेणिओ–श्रेणिक राजा पिता–उनका पिता हुआ और धारिणी माता–धारिणी माता । तेरसण्हवि–तेरह के तेरह कुमारों ने सोलस-वासा–सोलह वर्ष तक परियातो–संयम-पर्याय का पालन किया आणुपुव्वीए–अनुक्रम से दोन्नि–दो विजए–विजय विमान में उत्पन्न हुए, दोन्नि–दो वेजयंते–वैजयन्त विमान में दोन्नि–दो जयंते–जयन्त विमान में और दोन्नि–दो अपराजिते–अपराजित विमान में गए । सेसा–शेष महादुमसेणमाती–महाद्रुमसेन आदि पंच–पांच साधु सव्वट्ठसिद्धे–सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । जंबू–हे जम्बू ! एवं खलु–इस

प्रकार समणेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने अणुत्तरोववाइय-दसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के दोच्चस्स–द्वितीय वग्गस्स–वर्ग का अयमट्ठे–यह अर्थ पण्णत्ते–प्रतिपादन किया है । दोसुवि–दोनों ही वग्गेसु–वर्गों में मासियाए–मासिक २ संलेहणाए–संलेखना से शरीर का त्याग किया । अर्थात् दोनों वर्गों के प्रत्येक साधु ने एक २ मास का पादोपगमन अनशन व्रत धारण किया था ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो फिर हे भगवन् ! द्वितीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? सुधर्मा स्वामी जी ने जम्बू स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में कहा कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में राजगृह नाम नगर था । उसमें गुणशैलक चैत्य था । वहां श्रेणिक राजा था । उसकी धारिणी देवी थी । उसने सिंह का स्वप्न देखा । जिस प्रकार जालि कुमार का जन्म हुआ था, उसी प्रकार जन्म हुआ, उसी प्रकार बालकपन रहा और उसी प्रकार कलाएं सीखीं । विशेषता केवल इतनी है कि इसका नाम दीर्घसेन कुमार रखा गया । शेष वक्तव्यता जैसे जालि कुमार की है, उसी प्रकार जाननी चाहिए । यावत् महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगा इत्यादि । इसी प्रकार तेरह अध्ययनों के तेरह कुमारों के विषय में जानना चाहिए । ये सब राजगृह नगर में उत्पन्न हुए और सब के सब महाराज श्रेणिक और महारानी धारिणी देवी के पुत्र थे । इन तेरहों ने सोलह वर्ष तक संयम-पर्याय का पालन किया । इसके अनन्तर क्रम से दो विजय विमान, दो वैजयन्त विमान, दो जयन्त विमान और दो अपराजित विमान में उत्पन्न हुए । शेष महाद्रुमसेन आदि पांच मुनि सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए । हे जम्बू ! इस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का उक्त अर्थ प्रतिपादन किया है । उक्त दोनों वर्गों के मुनि एक २ मास के अनशन और संलेखना से काल-गत हुए थे । अर्थात् तेईस मुनियों ने एक २ मास का पादोपगमन और अनशन किया था ।

टीका—उक्त सूत्र में द्वितीय वर्ग के तेरह अध्ययनों का अर्थ वर्णन किया गया है । ये सब तेरह राजकुमार श्रेणिक राजा और धारिणी देवी के आत्मज अर्थात्

तृतीयो वर्गः

जति णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अणुत्तरो० दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पन्नत्ते तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं सम० जाव सं० के अट्ठे पं० ? एवं खलु जंबू ! समणेणं अणुत्तरोववाइय-दसाणं तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पन्नत्ता, तं जहा—

धण्णे य सुणक्खत्ते, इसिदासे अ आहिते ।
पेल्लए रामपुत्ते य, चंदिमा पिट्ठिमाइया ॥१॥
पेढालपुत्ते अणगारे, नवमे पुट्टिले इ य ।
वेहल्ले दसमे वुत्ते, इमे ते दस आहिते ॥२॥

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशानां द्वितीयस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः, तृतीयस्य नु भदन्त ! वर्गस्यानुत्तरोपपातिक-दशानां श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः

प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिकदशानां तृतीयस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा :–

धन्यश्च सुनक्षत्रः, ऋषिदासश्चाख्यातः ।
पेल्लको रामपुत्रश्च, चन्द्रिकः पृष्टिमातृकः ॥१॥
पेढालपुत्रोऽनगारः, नवमः पृष्टिमायी च ।
वेहल्लो दशम उक्तः, इमे ते दशाख्याताः ॥२॥

पदार्थान्वयः—भंते–हे भगवन् ! णं–पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिए है जति–यदि जाव–यावत् संपत्तेणं–मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं–श्रमण भगवान् महावीर ने अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के दोच्चस्स–द्वितीय वग्गस्स–वर्ग का अयमट्ठे–यह अर्थ पण्णत्ते–प्रतिपादन किया है तो भंते–हे भगवन् ! अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिक-दशा के तच्चस्स–तृतीय वग्गस्स–वर्ग का सम० जाव सं०–मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने के–क्या अट्ठे अर्थ प०–प्रतिपादन किया है ? इस प्रश्न को सुनकर सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि जम्बू–हे जम्बू ! एवं खलु–इस प्रकार निश्चय से समणेणं–श्रमण भगवान् महावीर ने अणुत्तरोववाइयदसाणं–अनुत्तरोपपातिकदशा के तच्चस्स–तृतीय वग्गस्स–वर्ग के दस–दश अज्झयणा–अध्ययन पन्नत्ता–प्रतिपादन किये हैं, तं जहा–जैसे—धण्णे धन्य कुमार और सुणक्खत्ते–सुनक्षत्र कुमार अ–और इसीदासे–ऋषिदास कुमार आहिते कथन किया गया है पेल्लए–पेल्लक कुमार य–और रामपुत्ते–राम पुत्र कुमार, चंदिमा–चन्द्रिका कुमार, पिट्ठिमाइया–पृष्टिमातृका कुमार पेढालपुत्ते–पेढालपुत्र अणगारे–अनगार य–और नवमे–नौवां पुट्ठिले–पृष्टिमायी कुमार दसमे–दशवां वेहल्ले–वेहल्ल कुमार वुत्ते–कहा गया है, इमे–ये ते–वे दस–दश अध्ययन आहिते–कहे गये हैं ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के द्वितीय वर्ग का उक्त अर्थ प्रतिपादन किया है, तो हे भगवन् ! मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के तृतीय वर्ग का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इसके उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं कि हे जम्बू !

मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने अनुत्तरोपपातिक-दशा के तृतीय वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं, जैसे—१–धन्य कुमार २–सुनक्षत्र कुमार ३–ऋषिदास कुमार ४–पेल्लक कुमार ५–रामपुत्र कुमार ६–चन्द्रिका कुमार ७–पृष्टिमातृका कुमार ८–पेढालपुत्र कुमार ९–पृष्टिमायी कुमार और १०–वेहल्ल कुमार। ये तृतीय वर्ग के दश अध्ययन कहे गये हैं।

टीका—द्वितीय वर्ग की समाप्ति होने पर जम्बू स्वामी ने फिर सुधर्मा स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन्! द्वितीय वर्ग का अर्थ तो मैंने श्रवण कर लिया है। अब मेरे ऊपर असीम कृपा करते हुए तृतीय वर्ग का अर्थ भी सुनाइए, जिस से मुझे उसका भी बोध हो जाय, इस प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी ने प्रतिपादन किया कि हे जम्बू! मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर ने तृतीय वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं। पाठकों को मूलार्थ में ही उनके नाम देख लेने चाहिएं।

यह हम पहले भी कह चुके हैं कि विनय और भक्ति से ग्रहण किया हुआ ही ज्ञान फलीभूत हो सकता है, बिना विनय के नहीं। यही शिक्षा इस सूत्र से भी मिलती है। अध्ययन का अर्थ ही शिक्षा-ग्रहण है। अतः पाठकों को इन सूत्रों का स्वाध्याय करते हुए अवश्य शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। यह बात भी केवल दोहराने मात्र ही रह जाती है कि सम्यक् ज्ञान की प्राप्ति के लिये सम्यक् चारित्र की आराधना की अत्यन्त आवश्यकता है, इन दोनों बातों की शिक्षा इस सूत्र से प्राप्त होती है, अतः यह वर्ग अवश्य पठनीय है।

अब जम्बू स्वामी तृतीय वर्ग के प्रथमाध्ययन के अर्थ के विषय में सुधर्मा स्वामी से प्रश्न करते हैं:—

जति णं भंते! सम० जाव सं० अणुत्तर० तच्चस्स वग्गस्स दस अज्झयणा प०, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पन्नत्ते? एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं कागंदी णाम णगरी होत्था रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा सहसंबवणे उज्जाणे

सव्वोदुए, जिअसत्तू राया, तत्थ णं कागंदीए नगरीए भद्दा णामं सत्थवाही परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूआ। तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते धन्नं नाम दारए होत्था, अहीण जाव सुरूवे पंच धाती-परिग्गहित, तं० खीर-धाती। जहा महव्वले जाव वावत्तरिं कलातो अहीए जाव अलं भोग-समत्थे जाते यावि होत्था।

यदि नु भदन्त ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिक-दशानां तृतीयस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य नु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये काकन्दी नाम नगरी वभूव, ऋद्धि-स्तिमित-समृद्धा, सहस्राम्रवनमुद्यानं सर्वर्तुषु, जितशत्रू राजा । तत्र नु काकन्द्यां नगर्यां भद्रा नाम सार्थवाहिनी परिवसति, आढ्या यावदपरिभूता । तस्या नु भद्रायाः सार्थवाहिन्याः पुत्रो धन्यो नाम दारकोऽभूत्, अहीनो यावत्सुरूपः पञ्चधातृ-परिगृहीतः, तद्यथा—क्षीर-धात्री। यथा महा-वलो यावद् द्वि-सप्ततिः कला अधीता । यावदलंभोग-समर्थो जातश्चाप्यभूत् ।

पदार्थान्वयः—भंते—हे भगवन् ! णं—वाक्यालङ्कार के लिए है जति—यदि सम० जाव सं०—मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अणुत्तर०—अनुत्तरोपपातिक-दशा के तच्चस्स—तृतीय वग्गस्स—वर्ग के दस—दश अज्झयणा—अध्ययन प०—प्रतिपादन किये हैं तो भंते—हे भगवन् ! पढमस्स—प्रथम अज्झयणस्स—अध्ययन का जाव—यावत् संपत्तेणं—मोक्ष को प्राप्त हुए समणेणं—श्रमण भगवान् महा-वीर ने के अट्ठे—क्या अर्थ पन्नत्ते—प्रतिपादन किया है । सुधर्मा स्वामी इस प्रश्न

के उत्तर में कहते हैं कि **जंबू**–हे जम्बू ! **तेणं कालेणं**–उस काल और **तेणं समएणं**–उस समय **काकंदी** काकन्दी **णाम**–नाम वाली **णगरी**–नगरी **होत्था**–थी और वह **रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा**–ऊँचे २ भवनों से युक्त, निर्भय तथा धन-धान्य से पूर्ण थी। उसके बाहर **सहसंबवने**–सहस्राम्रवन नाम वाला **उज्जाणे**–उद्यान था **सव्वोदुए**–सब ऋतुओं के पुष्प और फलों से युक्त था। उस नगरी में **जितसत्तू**–जितशत्रु नाम वाला **राया**–राजा राज्य करता था **तत्थ**–उस **काकंदीए**–काकन्दी नाम **नगरीए**–नगरी में **भद्दा णामं**–भद्रा नाम वाली **सत्थवाही**–सार्थवाहिनी **परिवसइ**–निवास करती थी। **अड्ढा**–वह ऋद्धिमती थी और **जाव**–यावत् **अपरिभूआ**–अपनी जाति और बराबरी के लोगों में धन आदि से अपरिभूत अर्थात् किसी से कम न थी। **तीसे**–उस **भद्दाए**–भद्रा **सत्थवाहीए**–सार्थवाहिनी का **पुत्ते**–पुत्र **धन्ने**–धन्य **नामं**–नाम वाला **दारए**–बालक **होत्था**–था जो **अहीणे**–किसी इन्द्रिय से भी हीन नहीं था अर्थात् जिसकी सब इन्द्रियां परिपूर्ण थीं और **सुरूवे**–सुरूप था **पंच-धाती-परिग्गहित्ते**–जो पांच धात्रियों (धाइयों) से परिगृहीत था **तं०**–जैसे—**खीर-धाई**–एक धाई दूध पिलाने के लिए नियत थी और शेष जैसा **महब्बले**–'भगवती सूत्र' में महाबल कुमार का वर्णन है उसी के समान जानना चाहिए **जाव**–यावत् **बावत्तरि**–बहत्तर **कलातो**–कलाएं **अहीए**–अध्ययन कीं **जाव**–यावत् **जाते**–यह बालक धीरे धीरे **अलंभोग-समत्थे यावि**–सब तरह के भोगों का उपभोग करने में समर्थ **होत्था**–हो गया।

मूलार्थ—हे भगवन् ! यदि श्रमण भगवान् महावीर ने, जो मुक्ति को प्राप्त हो चुके हैं, अनुत्तरोपपातिक-दशा के तृतीय वर्ग के दश अध्ययन प्रतिपादन किये हैं तो फिर हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान् महावीर ने क्या अर्थ प्रतिपादन किया है ? इस प्रश्न के उत्तर में श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं कि हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की एक नगरी थी। वह सब तरह के ऐश्वर्य और धन-धान्य से परिपूर्ण थी। उसमें किसी प्रकार के भी भय की शङ्का नहीं थी। उसके बाहर एक सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था, जो सब ऋतुओं में फल और फूलों से भरा रहता था। उस नगरी में जितशत्रु नाम राजा राज्य करता था। वहां भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी निवास करती थी। वह अत्यन्त समृद्धिशालिनी और धन-धान्य में अपनी

जाति और बराबरी के लोगों में किसी से किसी प्रकार भी परिभूत (तिरस्कृत) अर्थात् कम नहीं थी। उस भद्रा सार्थवाहिनी का धन्य नाम का एक सर्वाङ्ग-पूर्ण और रूपवान् पुत्र था। उसके पालन-पोषण करने के लिए पांच धाइयां नियत थीं। जैसे-एक का काम केवल उसको दूध पिलाना ही रहता था। शेष वर्णन जिस प्रकार महाबल कुमार का है उसी प्रकार से जानना चाहिए। इस प्रकार धन्य कुमार (धीरे २) सब भोगों को भोगने में समर्थ हो गया।

टीका—इस सूत्र में श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का वर्णन करते हैं। यह अध्ययन धन्य कुमार के जीवन-वृत्तान्त के विषय में है। वही सुधर्म्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को सुनाया है।

इस अध्ययन के पढ़ने से हमें उस समय की स्त्री जाति की उन्नत अवस्था का पता लगता है। उस समय स्त्रियां आज-कल के समान पुरुषों के ऊपर ही निर्भर नहीं रहती थीं, किन्तु स्वयं उनकी बराबरी में व्यापार आदि बड़े २ कार्य करती थीं। उन्हें व्यापार आदि के विषय में सब तरह का पूरा ज्ञान होता था। देशान्तरों में भी उनका व्यापार-वाणिज्य आदि का कार्य चलता था। यहां भद्रा नाम की स्त्री सार्थवाही का काम स्वयं करती थी और इस पर भी विशेषता यह कि अपनी जाति के लोगों में वह किसी से कम न थी। यह बात उस उन्नति के शिखर पहुंची हुई स्त्री-समाज का चित्र हमारी आँखों के सामने खींचती है। इसके अतिरिक्त हमें अन्य जैन शास्त्रों के अध्ययन से निश्चय होता है कि उस समय स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के अधिकारों से किसी अंश में भी कम न थे। उस समय की स्त्रियां वास्तव में अर्द्धाङ्गिनियां थीं। उन्होंने पुरुषों के समान ही मोक्ष-गमन भी किया। अतः शूद्र जाति और स्त्रियों को क्षुद्र मानने वालों को भ्रान्ति निवारण के लिए एक बार जैन शास्त्रों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

अब सूत्रकार पूर्व सूत्र से ही सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं :—

तते णं सा भद्दा सत्थवाही धन्नं दारयं उम्मुक्क-बालभावं जाव भोग-समत्थं वावि जाणेत्ता बत्तीसं पासाय-वडिंसते कारेति अब्भुगत-मुस्सिते जाव तेसिं मज्झे भवणं

अणेग-खंभ-सय-सन्निविट्ठं । जाव बत्तीसाए इब्भवर-कन्नगाणं एगदिवसेणं पाणिं गेण्हावेति २ बत्तिसाओ दाओ। जाव उप्पिं पासाय० फुट्टंतेहि विहरति ।

ततो नु सा भद्रा सार्थवाहिनी धन्यं दारकमुन्मुक्त-बालभावं यावद्भोग-समर्थं वापि ज्ञात्वा द्वात्रिंशत्प्रासादावतंसकानि कारयत्यभ्युद्गतोच्छ्रितानि । तेषां मध्ये भवनमनेकस्तम्भशत-सन्निविष्टम् । यावद् द्वात्रिंशदिभ्यवर-कन्यकानामेकेन दिवसेन पाणिं ग्राहयति । द्वात्रिंशद् दातानि । यावदुपरि प्रासादे स्फुटद्भिर्विहरति ।

पदार्थान्वयः—ततो—इसके अनन्तर णं—वाक्यालङ्कार के लिये है सा—वह भद्दा—भद्रा सत्थवाही—सार्थवाहिनी धन्नं—धन्य दारयं—बालक को उम्मुक्कबालभावं—बालकपन से अतिक्रान्त और जाव—यावत् भोगसमत्थं—भोगों के उपभोग करने में समर्थ जाणेत्ता—जानकर बत्तीसं—बत्तीस अब्भुग्गतमुस्सिते—बहुत बड़े और ऊँचे पासायवडिंसते—श्रेष्ठ प्रासाद (महल) कारेति—बनवाती है । जाव—यावत् तेसिं—उनके मज्झ—मध्य में अणेगखंभसयसन्निविट्ठं—अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त भवणं—एक भवन बनवाया । जाव—यावत् उसने बत्तीसाए—बत्तीस इब्भवरकन्नगाणं—श्रेष्ठ श्रेष्ठियों की कन्याओं के साथ एगदिवसेणं—एक ही दिन पाणिं गिण्हावेति—पाणि-ग्रहण करवाया इनके साथ बत्तीसाओ—बत्तीस दाओ—दास, दासी, धन और धान्य आदि दहेज आए । जाव—यावत् वह धन्य कुमार उप्पिं—ऊपर पासाय०—श्रेष्ठ महलों में फुट्टंतेहिं—जोर २ से बजते हुए मृदङ्ग आदि वाद्यों के नाद से युक्त उन महलों में जाव—यावत् पांच प्रकार के मनुष्य-सुखों का अनुभव करते हुए विहरति—विचरता है ।

मूलार्थ—इसके अनन्तर उस भद्रा सार्थवाहिनी ने धन्य कुमार को बालकपन से मुक्त और सब तरह के भोगों को भोगने में समर्थ जानकर बत्तीस बड़े २ अत्यन्त ऊँचे और श्रेष्ठ भवन बनवाये । उनके मध्य में एक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त भवन बनवाया । फिर बत्तीस श्रेष्ठ कुलों की कन्याओं से एक

ही दिन उसका पाणि-ग्रहण कराया । उनके साथ बत्तीस (दास, दासी और धन-धान्य से युक्त) दहेज आये । तदनन्तर धन्य कुमार अनेक प्रकार के मृदङ्ग आदि वाद्यों की ध्वनि से गुञ्जित प्रासादों के ऊपर पञ्च-विध सांसारिक सुखों का अनुभव करते हुए विचरण करने लगा ।

टीका—उक्त सूत्र में धन्य कुमार के बालकपन, विद्याध्ययन, विवाह-संस्कार और सांसारिक सुखों के अनुभव के विषय में कथन किया गया है । यह सब वर्णन 'ज्ञातासूत्र' के प्रथम अथवा पांचवें अध्ययन के साथ मिलता है । कहने की आवश्यकता नहीं कि पाठकों को वहीं से इसका बोध करना चाहिए ।

अब सूत्रकार धन्य कुमार के बोध के विषय में कहते हैं :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं महावीरे समोसढे, परिसा निग्गया, जहा कोणितो तहा जियसत्तू निग्गतो ततेणं तस्स धन्नस्स तं महता जहा जमाली तहा निग्गतो, नवरं पायचारेणं जाव जं नवरं अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं आपुच्छामि । तते णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिते जाव पव्वयामि । जाव जहा जमाली तहा आपुच्छइ । मुच्छिया, वुत्त-पडिवुत्तया जहा महव्वले जाव जाहे णो संचाएति जहा थावच्चापुत्तो जियसत्तुं आपुच्छति । छत्त-चामरातो सयमेव जितसत्तू णिक्खमणं करेति । जहा थावच्चापुत्तस्स कण्हो जाव पव्वतिते० अणगारे जाते ईरियासमिते जाव बंभयारी ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः समवसृतः, परिषन्निर्गता, यथा कूणितस्तथा जितशत्रुर्निर्गतः ।

ततो नु स धन्यः(स्य) तन्महता यथा जमालिस्तथा निर्गतः, नवरं पादचारेण, यावन्नवरं यदम्वां भद्रां सार्थवाहिनीमापृच्छामि । ततो न्वहं देवानुप्रियाणामन्तिके यावत्प्रव्रजामि । यावद् यथा जमालिस्तथापृच्छति । मूर्च्छितोक्ति-प्रत्युक्त्या यथा महाबलो यावद् यदा न शक्नोति, यथा स्त्यावत्यापुत्रो जितशत्रुमापृच्छति । छत्र-चामरादिभिः स्वयमेव जितशत्रुर्निष्क्रमणं करोति । यथा स्त्यावत्यापुत्रस्य कृष्णो यावत्प्रव्रजितोऽनगारो जात ईर्यासमितो यावद् ब्रह्मचारी ।

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस काल और तेणं समएणं—उस समय समणे—श्रमण भगवं—भगवान् महावीरे—महावीर स्वामी समोसढे—सहस्राम्रवन उद्यान में विराजमान हुए । परिसा—नगर की परिषद् निग्गया—उनकी वन्दना करने के लिए गई जहा—जिस प्रकार कोणित—कूणित अथवा कोणिक राजा गया था तहा—उसी प्रकार जित्तसत्तू—जितशत्रु भी निग्गतो—गया तते—इसके अनन्तर णं—वाक्यालङ्कार के लिये है तस्स—वह धन्नस्स—धन्य कुमार तं—उस महता—बड़े भारी के ऐश्वर्य से जहा—जिस प्रकार जमाली—जमालि कुमार गया था तहा—उसी प्रकार निग्गतो—गया नवरं—विशेषता इतनी है धन्य कुमार पायचारेण—पैदल गया, जाव—यावत् जं नवरं—इतनी और विशेषता है कि उसने कहा कि मैं अम्मयं—माता भद्दं—भद्रा सत्थवाहिं—सार्थवाहिनी को आपुच्छामि—पूछता हूं णं—पूर्ववत् तते—इसके अनन्तर अहं—मैं देवाणुप्पियाणं—आपके अंतिते—पास जाव—यावत पव्वयामि—प्रव्रजित हो जाऊंगा अर्थात् दीक्षा ग्रहण कर लूंगा । जाव—यावत् जहा—जैसे जमाली—जमालि कुमार ने पूछा था तहा—उसी तरह आपुच्छइ—पूछता है । माता यह सुनकर मुच्छिया—मूर्च्छित हो गई वुत्तपडिवुत्तया—मूर्च्छा टूटने पर माता-पुत्र की इस विषय में बात-चीत हुई जहा—जैसे महब्बले—महाबल कुमार की हुई थी जाव—यावत् जाहे—जब (माता) णो संचाएति—(पुत्र को रखने में) समर्थ न हो सकी तब जहा—जैसे थावच्चापुत्तो—स्त्यावत्या पुत्र की माता ने कृष्ण को पूछा था ठीक उसी प्रकार भद्रा सार्थवाहिनी ने जियसत्तुं—जित शत्रु राजा को आपुच्छइ—पूछा और दीक्षा के लिए

छत्तचामरातो०–छत्र और चामर मांगा जितसत्तू–जितशत्रु राजा सयमेव–अपने आप ही निक्खमणं करेति–धन्य कुमार की दीक्षा के लिये उपस्थित होगया। जहा–जैसे थावच्चापुत्तस्स–स्थावत्यापुत्र का कण्हो–कृष्ण वासुदेव ने किया था इसी प्रकार जाव–यावत् पव्वतिते–प्रव्रजित होकर अणगारे–अनगार (साधु) हुआ ईर्यासमिते–वह ईर्या-समिति वाला जाव–यावत् साधुओं के सब गुणों से युक्त बंभयारी–ब्रह्मचारी हुआ।

मूलार्थ—उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहां विराजमान हुए। नगर की परिषद् उनकी वन्दना के लिये गई। कोणिक राजा के समान जितशत्रु राजा भी गया। धन्य कुमार भी जमालि कुमार की तरह गया। विशेषता केवल यही है कि धन्य कुमार पैदल ही गया। दूसरी विशेषता यह है कि (भगवान् के उपदेश को सुनकर) उसने कहा कि हे भगवन्! मैं अपनी माता भद्रा सार्थवाहिनी को पूछ कर आता हूं। इसके अनन्तर मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर दीक्षित हो जाऊँगा। (वह घर आया) उसने अपनी माता से जिस प्रकार जमालि कुमार ने पूछा था, उसी प्रकार पूछा। माता यह सुनकर मूर्च्छित हो गई। (मूर्च्छा से उठने के अनन्तर) माता-पुत्र में इस विषय में प्रश्नोत्तर हुए। जब वह भद्रा महाबल के समान पुत्र को रोकने के लिये समर्थ न हो सकी तो उसने स्त्यावत्यापुत्र के समान जितशत्रु राजा से पूछा और दीक्षा के लिए छत्र और चामर की याचना की। जितशत्रु राजा ने स्वयं उपस्थित होकर जिस प्रकार कृष्ण वासुदेव ने स्त्यावत्यापुत्र की दीक्षा की थी इसी प्रकार धन्य कुमार का दीक्षा-महोत्सव किया। धन्य कुमार दीक्षित हो गया और ईर्या-समिति, ब्रह्मचर्य आदि सम्पूर्ण गुणों से युक्त होकर विचरने लगा।

टीका—इस सूत्र में वर्णन किया गया है कि जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काकन्दी नगरी में विराजमान हुए तो नगर की परिषद् के साथ धन्य कुमार भी उनके दर्शन करने और उनसे उपदेशामृत पान करने के लिए उनकी सेवा में उपस्थित हुआ। उनके उपदेश का धन्य कुमार पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह तत्काल ही सम्पूर्ण सांसारिक भोग-विलासों को ठोकर मार कर गृहस्थ से साधु बन गया।



इस सूत्र में हमें चार उपमाएं मिलती हैं। उनमें से दो धन्य कुमार के विषय में हैं और शेष दो में से एक जितशत्रु राजा की कोणिक राजा से तथा चौथी दीक्षा-महोत्सव की कृष्ण वासुदेव के किये हुए दीक्षा-महोत्सव से है। ये सब 'औपपातिकसूत्र', 'भगवतीसूत्र' और 'ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र' से ली गई हैं। इन सबका उक्त सूत्रों में विस्तृत वर्णन मिलता है। अतः पाठकों को इनका एक बार अवश्य स्वाध्याय करना चाहिए। ये सब सूत्र ऐतिहासिक दृष्टि से भी अत्यन्त उपयोगी हैं। क्योंकि इस सूत्र की क्रमसंख्या उक्त सूत्रों के अनन्तर ही है। अतः यहां उक्त वर्णन के दोहराने की आवश्यकता न जान कर, इसका संक्षेप कर दिया गया है।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के अभिग्रह के विषय में कहते हैं :—

तते णं से धन्ने अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे भवित्ता जाव पव्वतिते तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदति णमंसति२ एवं व० इच्छामि णं भंते! तुब्भेणं अब्भणुण्णाते समाणे जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिल-परिग्गहिएणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरित्तते छट्ठस्स वि य णं पारणयंसि कप्पति आयंबिलं पडिग्गाहित्तते णो चेव णं अणायंबिलं, तं पि य संसट्ठं णो चेव णं असंसट्ठं, तं पि य णं उज्झिय-धम्मियं नो चेव णं अणुज्झिय-धम्मियं, तं पि य जं अन्ने बहवे समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगा णावकंखति। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह। तते णं से धन्ने अणगारे समणेणं भगवता

महा० अब्भणुन्नाते समाणे हट्ठ तुट्ठ जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरति ।

ततो नु स धन्योऽनगारो यस्मिन्नेव दिवसे मुण्डो भूत्वा यावत्प्रव्रजितस्तस्मिन्नेव दिवसे श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दति, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्कृत्य चैवमवादीत् "इच्छामि नु भदन्त ! त्वयाभ्यनुज्ञातः सन् यावज्जीवं षष्ठ-षष्ठेनानिक्षिप्तेनाचाम्ल-परिगृहीतेन तपः-कर्मणात्मानं भावयन् विहर्तुम्। षष्ठस्यापि च नु पारणके कल्प ऽआचाम्लं प्रतिग्रहीतुं नो चैव न्वनाचाम्लम्, तदपि च संसृष्टं नो चैव न्वसंसृष्टम्, तदपि च नूज्झित-धर्मिकं नो चैव न्वनुज्झित-धर्मिकम्, तदपि च यदन्नं बहवः श्रमण-ब्राह्मणातिथि-कृपण-वनीपका नावकाङ्क्षन्ति" "यथा-सुखं देवानुप्रिय ! मां प्रतिबन्धं कुरु।" ततो नु स धन्योऽनगारः श्रमणेन भगवता महावीरेणाभ्यनुज्ञातः सन् हृष्टस्तुष्टो यावज्जीवं षष्ठ-षष्ठेनानिक्षिप्तेन तपःकर्मणात्मानं भावयन् विहरति।

पदार्थान्वयः—तते—दीक्षा के अनन्तर णं—वाक्यालङ्कार के लिए है से—वह धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार जं चेव दिवसं—जिसी दिन मुंडे—मुण्डित भवित्ता—हो कर जाव—यावत् पव्वतिते—प्रव्रजित हुआ तंचेव—उसी दिवसं—दिन समणं—श्रमण भगवं—भगवान् महावीरं—महावीर की वंदति—वन्दना करता है णमंसति २—नमस्कार करता है और वन्दना तथा नमस्कार करके एवं—इस प्रकार व०—कहने लगा भंते !—हे भगवन् ! णं—पूर्ववत् इच्छामि—मैं चाहता हूं तुब्भेणं—आप की अब्भणुण्णाते समाणे—आज्ञा प्राप्त हो जाने पर जावज्जीवाए—जीवन पर्यन्त छट्ठं छट्ठेणं—षष्ठ-षष्ठ तप से अणिक्खित्तेणं—अनिक्षिप्त (निरन्तर) आयंबिलपरिग-

हिएणं-आचाम्ल ग्रहण-रूप तवोकम्मेणं-तपःकर्म से अप्पाणं-अपनी आत्मा की भावेमाणे-भावना करते हुए विहरित्तते-विचरूं । य-और णं-पूर्ववत् छट्ठस्स वि-षष्ठ-तप के भी पारणयंसि-पारण करने में कप्पति-योग्य है आयंबिलं-शुद्धौद-नादि पडिग्गहित्तते-ग्रहण करना णो चेव णं-न कि अणायंबिलं-अनाचाम्ल ग्रहण करना य-और तं पि-वह भी संसट्ठं-संसृष्ट (खरडे) हाथों से दिया हुआ ही लेना चाहिए अर्थात् उसी से लेना चाहिये जिसके हाथ उस भोजन से लिप्त हों णो चेव-न कि असंसट्ठं-असंसृष्ट हाथों से य-और तं पि णं-वह भी उज्झिय-धम्मियं-परित्याग-रूप धर्म वाला हो णो चेव णं-न कि अणुज्झियधम्मियं-अपरित्याग रूप धर्म वाला य-और तं पि-वह भी ऐसा अन्ने-अन्न हो जं-जिसको बहवे-अनेक समण-श्रमण माहण-ब्राह्मण अतिहि-अतिथि किवण-कृपण-दरिद्र वणीमग-अन्य कई प्रकार के याचक णावकंखति-न चाहते हों । यह सुनकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कहा कि देवाणुप्पिया-हे देवानुप्रिय ! अहासुहं-जिस प्रकार तुम्हें सुख हो इस शुभ कार्य में पडिबंधं-विलम्ब मा-मत करेह-करो । तते णं-इसके बाद से-वह धन्ने-धन्य अणगारे-अनगार समणेणं-श्रमण भगवता-भगवान् महावीरेणं-महावीर की अब्भणुन्नाते-आज्ञा प्राप्त कर हट्ठतुट्ठ-आनन्दित और सन्तुष्ट हो कर जावज्जीवाए-जीवन भर छट्ठं छट्ठेणं-षष्ठ-षष्ठ अणिक्खित्तेणं-निरन्तर तपोकम्मेणं-तप-कर्म से अप्पाणं-अपनी आत्मा की भावेमाणे-भावना करते हुए विहरति-विचरण करता है ।

मूलार्थ—तत्पश्चात् वह धन्य अनगार जिस दिन मुण्डित हुआ, उसी दिन श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की वन्दना और नमस्कार कर कहने लगा कि हे भगवन् ! आपकी आज्ञा से मैं जीवन-पर्यन्त निरन्तर षष्ठ-षष्ठ तप और आचाम्ल-ग्रहण-रूप तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरना चाहता हूं । और षष्ठ (बेले) के पारण के दिन भी शुद्धौदनादि ग्रहण करना ही मुझ को योग्य है न कि अनाचाम्ल आदि । वह भी पूर्ण-रूप से संसृष्ट अर्थात् भोजन में लिप्त हाथों से दिया हुआ ही न कि असंसृष्ट हाथों से भी, वह भी परित्याग-रूप धर्म वाला हो न कि अपरित्याग-रूप वाला भी । उसमें भी वह अन्न हो जिसको अनेक श्रमण, ब्राह्मण, कृपण, अतिथि और वनीपक नहीं चाहते हों । यह सुनकर श्री श्रमण भगवान् ने कहा कि हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, करो । किन्तु इस पवित्र धर्म-

कार्य में विलम्ब करना ठीक नहीं । इसके अनन्तर वह धन्य कुमार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की आज्ञा से आनन्दित और सन्तुष्ट होकर निरन्तर षष्ठ-षष्ठ तप-कर्म से जीवन भर अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा ।

टीका—इस सूत्र में धन्य कुमार की धर्म-विषयक रुचि विशेष रूप से बताई गई है । वह दीक्षा प्राप्त कर इस प्रकार धर्म में तल्लीन हो गया कि दीक्षा के दिन से ही उसकी प्रवृत्ति बड़े २ तप ग्रहण करने की ओर हो गई । उसने उसी दिन भगवान् से निवेदन किया कि हे भगवन् ! मैं आपकी आज्ञा से जीवन भर षष्ठ (बेले) तप का आयंबिल-पूर्वक पारण करूँ । उसकी इस तरह की धर्म-जिज्ञासा देख कर श्री भगवान् ने प्रतिपादन किया कि हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो उसी प्रकार करो । यह सुन कर धन्य अनगार ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तप ग्रहण कर लिया ।

'उज्झित-धर्मिक' उसे कहते हैं, जिस अन्न को विशेषतया कोई नहीं चाहता हो । जैसे—"उज्झिय-धम्मियं ति, उज्झितं—परित्यागः स एव धर्मः—पर्यायो यस्यास्तीति उज्झित-धर्मः" अर्थात् जिस अन्न का सर्वथा त्याग कर दिया गया हो, वह 'उज्झित-धर्म' होता है । आयंबिल के पारण करने में ऐसा ही भोजन लेना चाहिए । 'समणेत्यादि—श्रमणो निर्ग्रन्थादिः, ब्राह्मणः—प्रतीतः, अतिथिः—भोजनकालोपस्थितः प्राघूर्णकः, कृपणः—दरिद्रः, वनीपकः—याचकविशेषः ।

अथ सूत्रकार पहले सूत्र से ही सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं :—

ततेणं से धण्णे अणगारे पढम-छट्ठ-क्खमण-पारणगंसि पढमाए पोरसाए सज्झायं करेति । जहा गोतमसामी तहेव आपुच्छति । जाव जेणेव कायंदी णगरी तेणेव उवागच्छति २ कायंदी णगरीए उच्च० जाव अडमाणे आयंबिलं जाव णावकंखंति । तते णं से धन्ने अणगारे ताए अब्भुज्जताए पययाए पग्गहियाए एसणाए जति भत्तं लभति तो पाणं ण लभति, अह पाणं तो भत्तं

न लभति । तते णं से धन्ने अणगारे अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अविसादी, अपरितंतजोगी, जयण-घडण-जोग-चरित्त अहापज्जत्तं समुदाणं पडिगाहेति२ कांकदीओ णगरीतो पडिणिक्खमति, जहा गोतमे जाव पडिदंसेति। तते णं से धन्ने अणगारे समणेणं भग० अब्भणुन्नाते समाणे अमुच्छिते जाव अणज्झोववन्ने बिलमिव पणग-भूतेणं अप्पाणेणं आहारं आहारेति२ संजमेण तवसा० विहरति ।

ततो नु स धन्योऽनगारः प्रथम-षष्ठ-क्षमण-पारणके प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं करोति । यथा गोतमस्वामी तथैवापृच्छति । यावद् येनैव काकन्दी नगरी तेनैवोपागच्छति, उपागत्य काकन्दीनगर्यामुच्च-नीचकुलेष्वटन्नाचाम्लं यावन्नावकाङ्क्षन्ति ततो नु स धन्योऽनगारस्तयाभ्युद्यतया प्रयतया, प्रदत्तया, प्रगृहीतयैषणया यदि भक्तं लभते पानं न लभतेऽथ पानं भक्तं न लभते । ततो नु स धन्योऽनगारोऽदीनोऽविमनाऽकलुषोऽविषाद्यपरितन्तयोगी यतन-घटन-योग-चरित्रो यथा-पर्याप्तं समुदानं प्रतिगृह्णाति, प्रतिगृह्य च काकन्द्या नगरीतः प्रतिनिष्क्रामति। यथा गोतमो यावत्प्रतिदर्शयति। ततो नु स धन्योऽनगारः श्रमणेन भगवताभ्यनुज्ञातः सन्नमूर्च्छितो यावदध्युपपन्नो बिलमिव पन्नगभूतेनात्मनाहारमाहारयति, आहार्य संयमेन तपसात्मानं भावयन् विहरति ।

पदार्थान्वयः—ततेणं—तत्पश्चात् से—वह धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार पढम—पहले छट्ठक्खमणपारणगंसि—षष्ठ-व्रत (वेले) के पारण में पढमाए—पहली पोरसीए—पौरुषी में सज्झायं—स्वाध्याय करेति—करता है जहा—जैसे गोतमसामी—गोतम स्वामी ने तहेव—उसी प्रकार धन्य अनगार ने आपुच्छति—पूछा। जाव—यावत् आज्ञा प्राप्त कर जेणेव—जहां कायंदी—काकन्दी णगरी—नगरी है तेणेव—उसी स्थान पर उवा० २—आता है और आकर कायंदीणगरीए—काकन्दी नगरी में उच्च०—ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में अडमाणे—भिक्षा के लिये फिरता हुआ आयंबिलं-आचाम्ल के लिये जाव—यावत् णावकंखंति—जिस आहार को कोई नहीं चाहता उसी को ग्रहण करता है। ततेणं—इसके बाद से—वह धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार ताए—उस आहार की अब्भुज्जताए—उद्यम वाली पययाए—प्रकृष्ट यत्न वाली पयत्ताए—गुरुओं से आज्ञप्त पग्गहियाए—उत्साह के साथ स्वीकार की हुई एसणाए-एषणा-समिति से गवेषणा करता हुआ जति—यदि भत्तं—भात लभति—मिलता है पाणं—पानी ण लभति—नहीं मिलता है अह—अथवा पाणं—पानी मिलता है तो भत्तं—भात न लभति—नहीं मिलता। तते—इसके अनन्तर णं—पूर्ववत् से—वह धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार अदीणो—दीनता से रहित अविमणे अशून्य अर्थात् प्रसन्नचित्त से अकलुसे—क्रोध आदि कलुषों से रहित अविसादी—विषाद-रहित अपरितंतजोगी—अविश्रान्त अर्थात् निरन्तर समाधि-युक्त जयण—प्राप्त योगों में उद्यम करने वाला घडण—अप्राप्त योगों की प्राप्ति के लिये उद्यम करने वाला जोग—मन आदि इन्द्रियों का संयम करने वाला चरित्ते—जिसका चरित्र था अहापज्जत्तं—वह जो कुछ भी पर्याप्त समुदाणं—भिक्षा-वृत्ति से प्राप्त होता था उसको पडिगाहेति २—ग्रहण करता है और ग्रहण कर काकंदीओ—काकन्दी णगरीतो—नगरी से पडिणिक्खमति २—निकलता है और फिर निकल कर जहा—जैसे गोतमे—गोतम स्वामी जाव—यावत् पडिदंसेति२—श्री भगवान् महावीर स्वामी को भिक्षा-वृत्ति से एकत्रित आहार दिखाता है और दिखाकर तते—इसके बाद णं—पूर्ववत् से—वह धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार समणेणं—श्रमण भग०—भगवान् महावीर स्वामी की अब्भणुन्नाते समाणे—आज्ञा प्राप्त होने अमुच्छिते—मूर्च्छा से रहित जाव—यावत् उस भिक्षा-वृत्ति से प्राप्त किये हुए भोजन को अणज्झोववण्णे—राग और द्वेष से रहित होकर अर्थात् अनासक्त भाव से पण्णगभूतेणं—सर्प के समान मुख से

बिलमिव–बिल के समान अर्थात् जिस प्रकार सर्प केवल पार्श्व-भागों के संस्पर्श से विल में घुस जाता है इसी प्रकार धन्य अनगार भी **आहारं**–आहार को विना आसक्ति के **आहारेति** २–मुंह में डाल देता है और आहार कर फिर **संजमेण**–संयम और **तवसा०**–तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए **विहरति**–विचरण करता है।

मूलार्थ—इसके अनन्तर वह धन्य अनगार प्रथम-षष्ठ-क्षमण के पारण के दिन पहली पौरुषी में स्वाध्याय करता है। फिर जिस प्रकार गोतम स्वामी आहार के लिये श्री श्रमण भगवान् की आज्ञा लेता था इसी प्रकार वह भी श्री भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर काकन्दी नगरी में जाकर ऊंच, मध्य और नीच सब तरह के कुलों में आचाम्ल के लिए फिरता हुआ जहां दूसरों से उज्झित मिलता था वहीं से ग्रहण करता था। उसको बड़े उद्यम से प्राप्त होने वाली, गुरुओं से आज्ञप्त उत्साह के साथ स्वीकार की हुई एषणा-समिति से युक्त भिक्षा में जहां भात मिला, वहां पानी नहीं मिला, तथा जहां पानी मिला, वहां भात नहीं मिला। इस पर भी वह धन्य अनगार कभी दीनता, खेद, क्रोध आदि कलुषता और विषाद प्रकट नहीं करता था, प्रत्युत निरन्तर समाधि-युक्त हो कर, प्राप्त योगों में अभ्यास करता हुआ और अप्राप्त योगों की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हुए चरित्र से जो कुछ भी भिक्षा-वृत्ति से प्राप्त होता था उसको ग्रहण कर काकन्दी नगरी से बाहर आ जाता था और बाहर आकर जिस तरह गोतम स्वामी आहार श्री भगवान् को दिखाते थे उसी तरह दिखाता था। दिखाकर श्री भगवान् की आज्ञा से बिना आसक्ति के जिस प्रकार एक सर्प केवल पार्श्व भागों के स्पर्श से बिल में घुस जाता है इसी प्रकार वह भी बिना किसी विशेष इच्छा के (केवल शरीर-रक्षा के लिये) आहार ग्रहण करता था और आहार ग्रहण करने के अनन्तर फिर संयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करता था।

टीका— इस सूत्र में धन्य अनगार की प्रतिज्ञा-पालन करने की दृढ़ता का वर्णन किया गया है। प्रतिज्ञा ग्रहण करने के अनन्तर वह जब भिक्षा के लिये नगरों में गया तो उसको कहीं भात मिला तो पानी नहीं मिला, जहां भात मिला था वहां पानी नहीं। किन्तु इतना होने पर भी उसने धैर्य का त्याग कर

दीनता नहीं दिखाई । वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहा और उसीके अनुसार आत्मा को दृढ और निश्चल बनाकर संयम-मार्ग में प्रसन्न-चित्त होकर विचरता रहा । भिक्षा से उसको जो कुछ भी आहार प्राप्त होता था उसको वह इतनी ऋजुता से खाता था जैसे एक सांप बिल में घुसता है अर्थात् वह भोजन को स्वाद के लिये न खाता था, प्रत्युत संयम के लिये शरीर-रक्षा ही उसको भोजन से अभीष्ट थी ।

'बिलं पन्नगभूतेन' का वृत्तिकार यह अर्थ करते हैं :—" यथा बिले पन्नगः पार्श्वसंस्पर्शेनात्मानं प्रवेशयति तथायमाहारं मुखेन संस्पृशन्निव रागविरहितत्वादाहारयति " अर्थात् इस प्रकार बिना किसी आसक्ति के आहार कर फिर संयम के योगों में अपनी आत्मा को दृढ़ करता था इतना ही नहीं बल्कि अप्राप्त ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये भी सदा प्रयत्नशील रहता था ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के पठन के विषय में कहते हैं :—

समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ काकंदीए णगरीतो सहसंबवणातो उज्जाणातो पडिणिक्खमति २ बहिया जणवय-विहारं विहरति । तते णं से धन्ने अणगारे समणस्स भ० महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिते सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जति, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति । तते णं से धन्ने अणगारे तेणं ओरालेणं जहा खंदतो जाव सुहुय० चिट्ठति ।

श्रमणो भगवान् महावीरोऽन्यदा कदाचित् काकन्द्या नगरीतः सहस्राम्रवनादुद्यानात्प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिर्जनपद-विहारं विहरति । ततो नु स धन्योऽनगारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके

सामायिकादिकान्येकादशाङ्गान्यधीते संयमेन तपसात्मानं भावयन् विहरति । ततो नु स धन्योऽनगारस्तेनोदारेण यथा स्कन्दको यावत्सुहुताशन इव तिष्ठति ।

पदार्थान्वयः—समणे–श्रमण भगवं–भगवान् महावीरे–महावीर अएणया–अन्यदा कयाइ–कदाचित् काकंदीए–काकन्दी णगरीतो–नगरी से सहसंबवणातो–सहस्राम्रवन उज्जाणातो–उद्यान से पडिणिक्खमतिर–निकलते हैं और निकल कर बहिया–बाहर जणवयविहारं–जनपद-विहार के लिये विहरति–विचरण करते हैं। तते–इसके अनन्तर णं–वाक्यालङ्कार के लिए है से–वह धन्ने–धन्य अणगारे–अनगार समणस्स भ०–श्रमण भगवान् महावीरस्स–महावीर के तहारूवाणं–तथारूप थेराणं–स्थविरों के अंतिते–पास सामाइयमाइयाइं–सामायिक आदि एक्कारस–एकादश अंगाइं–अङ्गों को अहिज्जति–पढ़ता है । संजमेणं–संयम और तवसा–तप से अप्पाणं–अपनी आत्मा की भावेमाणे–भावना करते हुए विहरति–विचरण करता है तते णं–तत्पश्चात् से–वह धन्ने–धन्य अणगारे–अनगार तेणं–उस ओरालेणं–उदार तप से जहा–जैसे खंदतो–स्कन्दक जाव–यावत् सुहुय०–हवन की अग्नि के समान तप से जाज्वल्यमान होकर चिट्ठति–रहता है ।

मूलार्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अन्यदा किसी समय काकन्दी नगरी के सहस्राम्रवन उद्यान से निकल कर बाहर जनपद-विहार के लिए विचरने लगे । (इसी समय) वह धन्य अनगार भगवान् महावीर के तथारूप स्थविरों के पास सामायिकादि एकादश अङ्ग-शास्त्रों का अध्ययन करने लगा । वह संयम और तप से अपने आत्मा की भावना करते हुए विचरता था । तदनु वह धन्य अनगार स्कन्दक संन्यासी के समान उस उदार तप के प्रभाव से हवन की अग्नि के समान प्रकाशमान मुख से विराजमान हुआ ।

टीका—यह सूत्र स्पष्ट ही है । सब विषय सुगमतया मूलार्थ से ही ज्ञात हो सकता है । उल्लेखनीय केवल इतना है कि यद्यपि तप और संयम की कसौटी पर चढ़ कर धन्य अनगार का शरीर अवश्य कृश हो गया था, किन्तु उससे उसका आत्मा एक अलौकिक बल प्राप्त कर रहा था, जिसके कारण उसके मुख का प्रतिदिन बढ़ता हुआ तेज हवन की अग्नि के समान देदीप्यमान हो रहा था ।

अथ सूत्रकार धन्य अनगार के तप के साथ उनके शरीर का भी वर्णन करते हैं :—

धन्नस्स णं अणगारस्स पादाणं अयमेयारूवे तव-रूव-लावन्ने होत्था, से जहाणामते सुक्क-छल्लीति वा कट्ठ-पाउयाति वा जरग्ग-ओवाहणाति वा, एवामेव धन्नस्स अणगारस्स पाया सुक्का णिम्मंसा अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए पण्णायंति णो चेव णं मंस-सोणियत्ताए । धन्नस्स णं अणगारस्स पायंगुलियाणं अयमेयारूवे० से जहाणामते कल-संगलियाति वा मुग्ग-सं० वा मास-संगलियाति वा तरुणिया छिन्ना उण्हे दिन्ना सुक्का समाणी मिलाय-माणी२ चिट्ठति । एवामेव धन्नस्स पायंगुलियातो सुक्कातो जाव सोणियत्ताते ।

धन्यस्य न्वनगारस्य पादयोरिदमेतद्रूपं तपो-लावण्यम-भूदथ यथानामका शुष्क-छल्लीति वा काष्ठ-पादुकेति वा जरत्कोपानदिति वा, एवमेव धन्यस्यानगारस्य पादौ शुष्कौ निर्मांसावस्थि-चर्म-शिरावत्तया प्रज्ञायेते नो चैव नु मांस-शोणि-तवत्तया । धन्यस्य न्वनगारस्य पादाङ्गुलीनामिदमेतद्रूपं लावण्यमभूदथ यथानामका कलाय-संगलिकेति वा मुद्ग-संग-लिकेति वा माष-संगलिकेति वा तरुणा छिन्नोष्णे दत्ता शुष्का सती म्लायन्ती (म्लानिमुपगता) तिष्ठति, एवमेव धन्यस्यान-गारस्य पादाङ्गुलिकाः शुष्का यावत् शोणितवत्तया (प्र ज्ञायन्ते)।

पदार्थान्वयः—धन्नस्स–धन्य णं–पूर्ववत् अणगारस्स–अनगार के पादाणं–पैरों का अयमेयारूवे–इस प्रकार का तवरूवलावन्ने–तप-जनित सुन्दरता होत्था–हुई से–जैसे जहाणामते–यथानामक सुक्कछल्लीति वा–सूखी हुई वृक्ष की छाल अथवा कट्ठपाउयाति वा–लकड़ी की खडाऊं अथवा जरग्गओवाहणाति वा–जीर्ण उपानत (जूती) हो एवामेव–इसी तरह धन्नस्स–धन्य अणगारस्स–अनगार के पाया–पैर सुक्का–सूखे हुए णिम्मंसा–मांस-रहित अट्ठिचम्मछिरत्ताए–अस्थि, चर्म और शिराओं के कारण पण्णायंति–पहचाने जाते हैं णो चेव–न कि मंससोणियत्ताए–मांस और रुधिर के कारण। धन्नस्स–धन्य अणगारस्स–अनगार की पायंगुलियाणं–पैरों की अङ्गुलियों का अयमेयारूवे०–इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ से–जैसे जहाणामते–यथानामक कलसंगलियाति वा–कलाय–धान्य विशेष की फलियां अथवा मुग्ग-सं०–मूंग की फलियां अथवा माससंगलियाति–माष की फलियां वा–समुच्चय के लिए है तरुणिया–जो कोमल ही छिन्ना–तोड़कर उण्हे–गर्मी में दिन्ना–दी हुई अर्थात् रखी हुई सुक्कासमाणी–सूख कर मिलायमाणी–म्लान हो रही चिट्ठति–हो। एवामेव–इसी प्रकार धन्नस्स–धन्य की पायंगुलियातो–पैरों की अंगुलियां सुक्कातो–सूखी हुई जाव–यावत् सोणियत्ताते–मांस और रुधिर से नहीं पहचानी जाती प्रत्युत केवल अस्थि, मांस और शिराओं के कारण ही पहचानी जाती हैं।

मूलार्थ—धन्य अनगार के पैरों का तप से ऐसा लावण्य हो गया, जैसे सूखी हुई वृक्ष की छाल, लकड़ी की खड़ाऊं या जीर्ण जूता हो। इसी प्रकार धन्य अनगार के पैर केवल हड्डी, चमड़ा और नसों से ही पहचाने जाते थे, न कि मांस और रुधिर से। धन्य अनगार की पैरों की अंगुलियों का ऐसा तप-जनित लावण्य हुआ जैसा कलाय धान्य की फलियां, मूंग की फलियां अथवा माष (उड़द) की फलियां कोमल ही तोड़ कर धूप में डाली हुई मुरझा जाती हैं। धन्य अनगार की अंगुलियां भी इतनी मुरझा गई थीं कि उन में केवल हड्डी, नस और चमड़ा ही नजर आता था, मांस और रुधिर नहीं।

टीका—इस सूत्र में बताया गया है कि तप के कारण धन्य अनगार की शारीरिक दशा में कितना परिवर्तन हो गया। तप करने से उनके दोनों चरण इस प्रकार सूख गये थे जैसे सूखी हुई वृक्ष की छाल, लकड़ी की खड़ाऊं अथवा पुरानी

सूखी हुई जूती हो। उनके पैरों में मांस और रुधिर नाममात्र के लिए भी अवशिष्ट नहीं रह गया था, किन्तु केवल हड्डी, चमड़ा और नसें ही देखने में आते थे। पैरों की अंगुलियों की भी यही दशा थी। वे भी कलाय, मूंग या माष की उन फलियों के समान जो कोमल २ तोड़ कर धूप में डाल दी गई हों—मुरझा गई थीं। उन में भी मांस और रुधिर नहीं रह गया था।

इस प्रकार इन उपमाओं से धन्य अनगार के शरीर का वर्णन इस सूत्र में दिया गया है।

अब सूत्रकार इसी विषय से सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं :—

धन्नस्स जंघाणं अयमेयारूवे० से जहा० काक-जंघाति वा कंक-जंघाति वा ढेणियालिया-जंघाति वा जाव णो सोणियत्ताए, धन्नस्स जाणूणं अयमेयारूवे० से जहा कालि-पोरेति वा मयूर-पोरेति वा ढेणियालिया-पोरेति वा, एवं जाव नो सोणियत्ताए। धण्णस्स ऊरुस्स० जहानामते साम-करीलेति वा वोरी-करीलेति वा सल्लति० सामली० तरुणिते उण्हे जाव चिट्ठति, एवामेव धन्नस्स ऊरू जाव सोणियत्ताए।

धन्यस्य नु जङ्घयोरिदमेतद्रूपं तपो-लावण्यमभूदथ यथानामका काक-जङ्घेति वा कङ्क-जङ्घेति वा ढेणिकालिक-जङ्घेति वा यावन्नो शोणितवत्तया। धन्यस्य जान्वोरिदमेतद्रूपं तपो-लावण्यमभूदथ यथानामकं कालि-पर्वेति वा मयूर-पर्वेति वा ढेलिकालिका-पर्वेति वा, एवं यावच्छोणितवत्तया। धन्यस्योर्वोरिदमेतद्रूपं तपो-लावण्यमभूदथ यथानामकं श्याम-करीरमिति वा बदरी-करीरमिति वा शल्यकी-करीरमिति वा

शाल्मली-करीरमिति वा तरुणकमुष्णे यावत्तिष्ठति, एवमेव धन्यस्योरू यावच्छोणितवत्तया ।

पदार्थान्वयः—धन्नस्स–धन्य अनगार की जंघाणं–जङ्घाओं का अयमेयारूवे–इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ से जहा०–जैसे काकजंघाति वा–काक-जङ्घा हो कंकजंघाति वा–अथवा कङ्क पक्षी की जङ्घाएं हों ढेणियालियाजंघाति वा–ढेणिक पक्षी की जङ्घाएं हों, इसी प्रकार धन्य अनगार की जङ्घाएं भी जाव–यावत् सोणियत्ताए-मांस और रुधिर से नहीं पहचानी जाती थीं, धन्नस्स–धन्य अनगार के जाणूणं–जानुओं का अयमेयारूवे०–इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ से जहा०–जैसे कालि-पोरेति वा–कालि–वनस्पति विशेष का पर्व (सन्धि-स्थान) हो मयूर-पोरेति वा–मयूर के पर्व होते हैं ढेणियालिया-पोरेति वा–ढेणिक (ढक्क) पक्षी के पर्व होते हैं वा–सर्वत्र समुच्चयार्थक है एवं–इसी प्रकार जाव–यावत् धन्य अनगार के जानु सोणियत्ताए–मांस और रुधिर से नहीं पहचाने जाते थे । अर्थात् उनमें मांस और लहू अवशिष्ट नहीं था धरणस्स–धन्य अनगार के ऊरुस्स–ऊरुओं का इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ जहानामते–जिस प्रकार सामकरील्लेति वा–प्रियंगु वृक्ष की कोंपल बोरीकरील्लेति वा–बदरी–बेर की कोंपल सल्लति०–शल्य की वृक्ष की कोंपल सामली०–शाल्मली वृक्ष की कोंपल तरुणिते–कोमल ही तोड़ कर उराहे–गर्मी में मुरझाई हुई जाव–यावत् चिट्ठति रहती है एवामेव–ठीक इसी प्रकार धन्नस्स–धन्य अनगार के ऊरू–ऊरु जाव–यावत् सोणियत्ताए–मांस और रुधिर से नहीं पहचाने जाते ।

मूलार्थ—धन्य अनगार की जङ्घाएं तप के कारण इस प्रकार निर्मांस हो गई जैसे काक (कौवे) की, कङ्क पक्षी की और ढेणिक (ढंक) पक्षी की जङ्घाएं होती हैं । वे सूख कर इस तरह की हो गई कि मांस और रुधिर देखने को भी नहीं रह गया । धन्य अनगार के जानु तप से इस प्रकार सुशोभित हुए जैसे कालि नामक वनस्पति, मयूर और ढेणिक पक्षी के पर्व (गांठ) होते हैं । वे भी मांस और रुधिर से नहीं पहचाने जाते थे । धन्य अनगार के ऊरुओं की भी तप से इतनी सुंदरता हो गई जैसे प्रियंगु, बदरी, शल्यकी और शाल्मली वृक्षों की कोमल २ कोंपल तोड़ कर धूप में रखी हुई मुरझा जाती हैं । ठीक इस तरह धन्य अनगार के ऊरु भी मांस और रक्त से रहित हो कर मुरझा गये थे ।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की जङ्घा, जानु और ऊरुओं का वर्णन किया गया है । तप के प्रभाव से धन्य अनगार की जङ्घाएं मांस और रुधिर के अभाव से ऐसी प्रतीत होती थीं मानो काक-जङ्घा नाम के वनस्पति की–जो स्वभावतः शुष्क होती है–नाल हों । अथवा यों कहिए कि वे कौवे की जङ्घाओं के समान ही निर्मांस हो गई थीं । अथवा उनकी उपमा हम कङ्क और ढंक पक्षियों की जङ्घाओं से भी दे सकते हैं । इसी प्रकार उनके जानु भी उक्त काक-जङ्घा वनस्पति की गांठ के समान अथवा मयूर और ढंक पक्षियों के सन्धि-स्थानों के समान शुष्क हो गये थे । दोनों ऊरु मांस और रुधिर के अभाव से सूख कर इस तरह मुरझा गये थे जैसे प्रियङ्गु, बदरी, कर्कन्धू, शल्यकी या शाल्मली वनस्पतियों के कोमल २ कोंपल तोड़कर धूप में रखने से मुरझा जाते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि धन्य अनगार इस प्रकार धर्म की ओर आकर्षित हुए कि उन्होंने उसी पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया । यहां तक कि उनको शरीर का मोह भी लेश मात्र नहीं रहा । उन्होंने कठोर से कठोर तप करने प्रारम्भ किये । जिसका फल यह हुआ कि उनके किसी अङ्ग में भी मांस और रुधिर अवशिष्ट नहीं रहा । सर्वत्र केवल अस्थि, चर्म और नसा-जाल ही देखने में आता था ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के कटि आदि अङ्गों का वर्णन करते हैं :—

धन्नस्स कडि-पत्तस्स इमेया-रूवे० से जहानामए उट्ट-पादेति वा जरग्ग-पादेति वा जाव सोणियत्ताए, धन्नस्स उदर-भायणस्स इमे० से जहा० सुक्क-दिएति वा भज्जणय-कभल्लेति वा कट्ठ-कोलंबएति वा, एवामेव उदरं सुक्कं । धन्न० पांसुलिय-कडयाणं इमे० से जहा० थासयावलीति वा पाणावलीति वा मुंडावलीति वा । धन्नस्स पिट्ठि-करंडयाणं अयमेयारूवे० से जहा० कन्नावलीति वा गोलावलीति वा वट्टयावलीति वा । एवामेव० धन्नस्स

उर-कडयस्स अय० से जहा० चित्तकटरेति वा वियण-पत्तेति वा तालियंट-पत्तेति वा, एवामेव० ।

धन्यस्य कटि-पत्रस्येदमेतद्रूपं तपो-लावण्यमभूदथ यथानामक उष्ट्र-पाद इति वा जरद्गव-पाद इति वा यावच्छोणित-वत्तया। धन्यस्योदर-भाजनस्येदम् ० अथ यथानामकः शुष्क-दृतिरिति वा भर्जन-कभल्लमिति वा काष्ठ-कोलम्ब इति वा, एवमेवोदरं शुष्कम्० । धन्यस्य पांशुलिका-कटकयोरिदम्० अथ यथानामका स्थासिकावलीति वा पाणावलीति वा मुण्डावलीति वा धन्यस्य पृष्ठि-करण्डाणामिदमेतद्० अथ यथानामका कर्णावलीति वा गोलकावलीति वा वर्त्तकावलीति वा । एवमेव धन्यस्योरः-कटकस्येदम्० अथ यथानामकं? चित्तकटरमिति वा व्यजनक-पत्रमिति वा ताल-वृन्त-पत्रमिति वा, एवमेव० ।

पदार्थान्वयः—धन्नस्स—धन्य अनगार के कडिपत्तस्स—कटि-पट्ट का इमे-या रूवे०—इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ से जहानामए—जैसे—उट्टपादेति वा—उष्ट्र का पैर होता है अथवा जरग्गपादेति वा—बूढ़े बैल का पैर होता है इसी प्रकार जाव—यावत् सोणियत्ताए—मांस और रुधिर की सत्ता से नहीं पहचाने जाता था। धन्नस्स—धन्य अनगार के उदरभायणस्स—उदर-भाजन का इमे०—इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ से जहा०—जैसे सुक्कदिएति वा—सूखी हुई मशक होती है अथवा भज्जणयकभल्लेति वा—चने आदि भूनने का भाजन होता है अथवा कट्ठकोलंब-एति वा—काष्ठ का कोलम्ब (पात्र विशेष) होता है एवामेव—इसी प्रकार उदरं—उदर सुक्कं—सूख गया था, धन्न०—धन्य अनगार के पांसुलियकडाणं—पार्श्व भाग की अस्थियों के कटकों का इमे०—इस प्रकार की सुंदरता हुई से जहा०—जैसे थासया-वलीति—दर्पणों (आरसी) की पङ्क्ति होती है वा—अथवा पाणावलीति वा—पाण—भाजन विशेष की पङ्क्ति होती है अथवा मुंडावलीति वा—स्थाणुओं की पङ्क्ति होती है

इसी प्रकार धन्य अनगार की पांसुलियां भी हो गई थीं । धन्नस्स–धन्य अनगार के पिट्ठिकरडयाणं–पीठ की हड्डी के उन्नत प्रदेशों की अयमेयारूवे०–इस प्रकार की तप-जनित सुन्दरता हो गई से जहा०–जैसे कन्नावलीति वा–कान के भूषणों की पङ्क्ति होती है गोलावलीति वा–गोलक—वर्तुलाकार पाषाण विशेषों की पङ्क्ति होती है वट्टयावलीति वा–वर्तक—लाख आदि के बने हुए बच्चों के खिलौनों की पङ्क्ति होती है एवामेव०–इसी प्रकार तप के कारण धन्य अनगार के पृष्ठ-प्रदेशों की भी सुन्दरता हो गई थी । धन्नस्स–धन्य अनगार के उरकडयस्स–उर-(वक्ष-स्थल)फटक की अय०–इस प्रकार की सुन्दरता हो गई से जहा०जैसे चित्तकट्ठ-रेति वा–गौ के चरने के कुण्ड का अधोभाग होता है अथवा वियणपत्तेति वा–बांस आदि के पत्तों का पङ्खा होता है अथवा तालियंटपत्तेति वा–ताड़ के पत्तों का पङ्खा होता है एवामेव०–इसी प्रकार धन्य अनगार का वक्षःस्थल भी सूख गया था ।

मूलार्थ—धन्य अनगार के कटि-पत्र का इस प्रकार का तप-जनित लावण्य हुआ जैसे ऊँट का पैर हो, बूढ़े बैल का पैर हो । उसमें मांस और रुधिर का सर्वथा अभाव था । धन्य अनगार का उदर-भाजन इतना सुन्दराकार हो गया था जैसे सूखी मशक हो, चने आदि भूनने का भाण्ड हो अथवा लकड़ी का, बीच में मुड़ा हुआ, पात्र हो । उसका उदर भी ठीक इसी प्रकार सूख गया था । धन्य अनगार की पार्श्व की अस्थियां तप से इतनी सुन्दर हो गई थीं जैसे दर्पणों की पंक्ति हो, पाण नामक पात्रों की पंक्ति हो अथवा स्थाणुओं की पंक्ति हो । धन्य अनगार के पृष्ठ-प्रदेश के उन्नत भाग इतने सुन्दर हो गये थे जैसे कान के भूषणों की पंक्ति हो, गोलक–वर्तुलाकार पाषाणों की पंक्ति हो अथवा वर्तक–लाख आदि के बने हुए बच्चों के खिलौनों की पंक्ति हो । इसी प्रकार धन्य अनगार के पृष्ठ-प्रदेश भी सूख कर निर्मांस हो गये थे । धन्य अनगार के उर(वक्षःस्थल)-कटकों की इतनी सुन्दरता हो गई थी जैसे गौ के चरने के कुण्ड का अधोभाग होता है, बांस आदि का पङ्खा होता है अथवा ताड़ के पत्तों का पङ्खा होता है । ठीक इसी प्रकार उसका वक्षःस्थल भी सूख कर मांस और रुधिर से रहित हो गया था ।

टीका—इस सूत्र में क्रम से धन्य अनगार के कटि, उदर, पांसुलिका, पृष्ठ-प्रदेश और वक्षःस्थल का उपमा द्वारा वर्णन किया गया है । उनका कटि-प्रदेश तप के कारण मांस और रुधिर से रहित हो कर ऐसा प्रतीत होता था जैसे ऊँट

या बूढ़े बैल का खुर हो। इसी प्रकार उनका उदर भी सूख गया था। उसकी सूख कर ऐसी हालत हो गई थी जैसी सूखी मशक, चने आदि भूनने के पात्र अथवा कोलम्ब नामक पात्र-विशेष की होती है। शुष्क आदि शब्दों की वृत्तिकार निम्न-लिखित व्याख्या करते हैं :—

शुष्कः—शोषमुपगतो दृतिः—चर्ममयजलभाजनविशेषः । चणकादीनां भर्जनम्—पाकविशेषापादानं तदर्थं यत्कभल्लम्—कपालं घटादिकर्परं तत्तथा । शाखि-शाखानामवनतमग्रं भाजनं वा कोलम्ब उच्यते काष्ठस्य कोलम्ब इव काष्ठकोलम्बः, परिदृश्यमानावनतहृदयास्थिकत्वात् ।

कहने का तात्पर्य यह है कि धन्य अनगार का उदर भी सूखकर उक्त वस्तुओं के समान बीच में खोखला जैसा प्रतीत होता था। इसी प्रकार उनकी पांसुलिएं भी सूखकर कांटा हो गई थी। उनको इस तरह गिना जा सकता था जैसे—दर्पण की पंक्ति हो या गाय आदि पशुओं के चरने के पात्रों की पंक्ति अथवा उनके बांधने के कीलों की पंक्ति हो। उनमें मांस और रुधिर देखने को भी न था। यही दशा पृष्ठ-प्रदेशों की भी थी। उनमें भी मांस और रुधिर नहीं रह गया था और ऐसे प्रतीत होते थे मानो मुकुटों की, पाषाण के गोलकों की अथवा लाख आदि से बने हुए बच्चों के खिलौनों की पंक्ति खड़ी की हुई हो। उस तप के कारण धन्य अनगार के वक्षःस्थल (छाती) में भी परिवर्तन हो गया था। उससे भी मांस और रुधिर सूख गया था और पसलियों की पंक्ति ऐसी दिखाई दे रही थी मानो ये किलिञ्ज आदि के खण्ड हों अथवा यह बांस या ताड़ के पत्तों का बना हुआ पङ्खा हो।

इन सब अवयवों का वर्णन, जैसा पहले कहा जा चुका है, उपमालङ्कार से किया गया है। इससे एक तो स्वभावतः वर्णन में चारुता आगई है, दूसरे में पढ़ने वालों को वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने में अत्यन्त सुगमता प्राप्त होती है। जो विषय उदाहरण दे कर शिष्यों के सामने रखा जाता है, उसको अत्यल्प-बुद्धि भी बिना किसी विशेष परिश्रम के समझ जाता है।

हां, यह ध्यान रखने योग्य है कि धन्य अनगार का शरीर यद्यपि सूख कर कांटा हो गया था किन्तु उनकी आत्मिक शक्ति दिन-दिन बढ़ती चली जा रही थी।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के शेष अवयवों का वर्णन करते हैं :—

धन्नस्स बाहाणं० से जहानामते समि-संगलियाति वा बाहाया-संगलियाति वा अगत्थिय-संगलियाति वा एवामेव० । धन्नस्स हत्थाणं० से जहा० सुक्क-छगणियाति वा वड-पत्तेति वा पलास-पत्तेति वा एवामेव० । धन्नस्स हत्थंगुलियाणं० से जहा० कलाय-संगलियाति वा मुग्ग० मास० तरुणिया छिन्ना आयवे दिन्ना सुक्का समाणी एवामेव० ।

धन्यस्य बाह्वोः० अथ यथानामका शमी-सङ्कलिकेति वा, बाहाया-सङ्कलिकेति वा अगस्तिक-सङ्कलिकेति वा, एवमेव० । धन्यस्य हस्तयोः० अथ यथानामका शुष्क-छगणिकेति वा वट-पत्रमिति वा पलाश-पत्रमिति वा, एवमेव० । धन्यस्य हस्ताङ्गुलिकानाम्० अथ यथानामका कलाय-सङ्कलिकेति वा मुद्ग० माष० तरुणिका छिन्नातपे दत्ता सती, एवमेव० ।

पदार्थान्वयः—धन्नस्स—धन्य अनगार की बाहाणं०—भुजाओं की तप से इतनी सुन्दरता हुई से जहानामते—जैसे समिसंगलियाति वा—शमी वृक्ष की फली अथवा बाहायासंगलियाति वा—बाहाया—एक वृक्ष विशेष की फली अथवा अगत्थियसंगलियाति वा—अगस्तिक नामक वृक्ष की फली सूखकर हो जाती है एवामेव—इसी प्रकार उनकी भुजाएं भी मांस और रुधिर के अभाव से सूख गई थीं । धन्नस्स—धन्य अनगार के हत्थाणं०—हाथों की सुन्दरता इस प्रकार हो गई थी से जहा०—जैसे सुक्कछगणियाति वा—सूखा गोबर होता है अथवा वडपत्तेति वा—वट वृक्ष के सूखे हुए पत्ते होते हैं अथवा पलासपत्तेति वा—पलाश के सूखे हुए पत्ते होते हैं एवामेव०—उनके हाथों से भी मांस और रुधिर सूख गया था । धन्नस्स—धन्य अनगार की हत्थंगुलियाणं०—हाथ की अंगुलियों का तप से ऐसा लावण्य हुआ से जहा०—

जैसे कलायसंगलियाति वा—कलाय की फलियां अथवा मुग्ग०—मूंग की फलियां मास०—मास की फलियां जो तरुणिया—कोमल २ छिन्ना—तोड़ कर आयवे—धूप में दिन्ना—रखी हुई सुक्का समाणी—सूख कर मुरझा जाती हैं एवामेव—इसी प्रकार धन्य अनगार की अंगुलियां भी रुधिर और मांस से रहित हो कर सूख गईं थीं। उन में केवल अस्थि और चर्म ही अवशिष्ट रह गया था।

मूलार्थ—मांस और रुधिर के अभाव से धन्य अनगार की भुजाएं इस प्रकार हो गई थीं जैसे शमी, वाहाय और अगस्तिक वृक्ष की सूखी हुई फलियां हों। धन्य अनगार के हाथ सूख कर इस प्रकार हो गये थे जैसे सूखा गोमर होता है अथवा वट और पलाश के सूखे पत्ते होते हैं। उस तप के प्रभाव से धन्य अनगार की अंगुलियां भी सूख गईं थीं और ऐसी प्रतीत होती थीं मानो कलाय, मूंग अथवा माष (उड़द) की फलियां जो कोमल २ तोड़ कर धूप में रखी हुई हों। जिस प्रकार ये मुरझा जाती हैं इसी प्रकार उनकी अंगुलियां भी मांस और रुधिर के अभाव से मुरझा कर सूख गईं थीं।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की भुजा, हाथ और हाथ की अंगुलियों का उपमा अलङ्कार से वर्णन किया गया है। उनकी भुजाएं और अङ्गों के समान तप के कारण सूख गईं थीं और ऐसी दिखाई देती थीं जैसी शमी, अगस्तिक अथवा वाहाय वृक्षों की सूखी हुई फलियां होती हैं।

अगस्तिक और बाहाय का ठीक २ निश्चय नहीं हो सका है कि ये किन वृक्षों की और किस देश में प्रचलित संज्ञा हैं। वृत्तिकार ने भी इनके लिए केवल वृक्ष विशेष ही लिखा है। सम्भवतः उस समय किसी प्रान्त में ये नाम प्रचलित रहे हों।

यही दशा धन्य के हाथों की भी थी। उनसे भी मांस और रुधिर सूख गया था तथा वे इस तरह दिखाई देते थे जैसा सूखा गोबर होता है अथवा सूखे हुए वट और पलाश के पत्ते होते हैं। हाथ की अंगुलियों में भी विचित्र परिवर्तन हो गया था। जो अंगुलियां कभी रक्त और मांस से परिपूर्ण थीं, वे आज सूख कर एक निराली शोभा धारण कर रही थीं। सूख कर उनकी यह हालत हो गई थी जैसे एक कलाय, मूंग अथवा माष (उड़द) की फली की—जिसको कोमल ही तोड़

कर धूप में सुखा दिया हो–दशा होती है । वह पहले का मांस और रुधिर तो उनमें देखने को भी शेष नहीं रह गया था । यदि उनको कोई पहचान सकता था तो केवल अस्थि और चर्म से जो उनमें अवशिष्ट रह गये थे ।

बाहु शब्द यद्यपि उकारान्त है तथापि निम्न-लिखित सूत्र से उसको आकारान्त आदेश हो जाता है । अतः सूत्र में आया हुआ 'बाहाणं' पद प्राकृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है । किसी को अन्यथा भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए । सूत्र यह है :—

बाहोरात् ॥८।१।३६॥ बाहुशब्दस्य स्त्रियामाकारान्तादेशो भवति । बाहाए जेण धरिओ एक्काए ॥ स्त्रियामित्येव । वामे अरो बाहू ॥

इस प्रकरण में तप की ही महिमा विशेष रूप से वर्णन की गई है । साथ ही उपमा अलङ्कार से शरीर के सौन्दर्य का भी वर्णन किया गया है । यद्यपि सामान्यतः ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनों को मोक्ष के प्रति कारणता है तथापि चारित्र की प्रधानता दिखाने के लिये उसका पृथक् वर्णन किया गया है ।

अथ सूत्रकार धन्य अनगार की ग्रीवा, हनु, ओष्ठ और जिह्वा का वर्णन करते हैं :—

धन्नस्स गीवाए० से जहा० करग-गीवाति वा कुंडिया-गीवाति वा उच्चट्ठवणतेति वा एवामेव० । धन्नस्स णं हणुआए से जहा० लाउय-फलेति वा हकुव-फलेति वा अंब-गट्ठियाति वा एवामेव० । धन्नस्स उट्ठाणं से जहा० सुक्क-जलोयाति वा सिलेस-गुलियाति वा अलत्तग-गुलियाति वा एवामेव० । धन्नस्स जिब्भाए० से जहा० वड-पत्तेति वा पलास-पत्तेति वा साग-पत्तेति वा एवामेव० ।

धन्यस्य ग्रीवायाः० अथ यथानामका करक-ग्रीवेति वा कुण्डिका-ग्रीवेति वोच्चस्थापनक इति वा, एवमेव० । धन्यस्य

हनोः० अथ यथानामकमलाबु-फलमिति वा हकुव-फलमिति वा आम्रगुटिकेति वा, एवमेव०। धन्यस्योष्ठयोः० अथ यथानामका शुष्क-जलौकेति वा, श्लेष्म-गुटिकेति वाक्तक-गुटिकेति वा, एवमेव०। धन्यस्य जिह्वायाः० अथ यथानामकं वटपत्रमिति वा पलाश-पत्रमिति वा शाक-पत्रमिति वा, एवमेव०।

पदार्थान्वयः—धन्नस्स–धन्य (अनगार) की गीवाए०–ग्रीवा की ऐसी आकृति हो गई थी से जहा०–जैसी करगगीवाति वा–करवे (मिट्टी का छोटा सा पात्र) की ग्रीवा होती है अथवा कुंडियागीवाति वा–कुण्डिका (कमण्डलु) की ग्रीवा होती है उच्चट्ठवणतेति वा–अथवा उच्चस्थापनक–ऊँचे मुँह वाला वर्तन होता है एवामेव०–इसी प्रकार उनकी ग्रीवा भी सूखकर लम्बी दिखाई देती थी। धन्नस्स–धन्य अनगार का हणुआए–चिबुक–ठोडी ऐसी सुन्दर हो गई थी से जहा०–जैसे लाउयफलेति वा–तुम्बे का फल होता है हकुवफलेति वा–हकुव–वनस्पति विशेष का फल होता है अथवा अंबगट्ठियाति वा–आम की गुठली होती है एवामेव०–इसी प्रकार धन्य अनगार का चिबुक भी मांस और रुधिर से रहित हो कर सूख गया था। धन्नस्स–धन्य अनगार के उट्ठाणं–ओंठ ऐसे हो गये थे से जहा०–जैसे सुक्कजलोयाति वा–सूखी हुई जोंक होती है अथवा सिलेसगुलियाति वा श्लेष्म की गुटिका होती है अथवा अलत्तगगुलियाति वा–अलक्तक–मेंहदी की गुटिका होती है एवामेव०–इसी प्रकार धन्य अनगार के ओंठ भी मुरझा गये थे। धन्नस्स–धन्य अनगार की जिब्भाए–जिह्वा ऐसी हो गई थी से जहा०–जैसे वडपत्तेति वा–वट वृक्ष का पत्ता होता है अथवा पलासपत्तेति वा–पलाश वृक्ष का पत्ता होता है अथवा साकपत्तेति वा–शाक के पत्ते होते हैं एवामेव०–इसी प्रकार धन्य अनगार की जिह्वा भी सूख गई थी।

मूलार्थ—धन्य अनगार की ग्रीवा मांस और रुधिर के अभाव से सूख कर इस तरह दिखाई देती थी जैसी सुराई, कुण्डिका (कमण्डलु) और किसी ऊंचे मुख वाले पात्र की ग्रीवा होती है। उनका चिबुक (ठोडी) भी इसी प्रकार सूख गया था और ऐसा दिखाई देता था जैसा तुम्बे या हकुव

का फल अथवा आम की गुठली होती है । ओठों की भी यही दशा थी। वे भी सूख कर ऐसे हो गये थे जैसे सूखी हुई जोंक होती है अथवा श्लेष्म या मेंहदी की गुटिका होती है । उनमें रक्त का बिलकुल अभाव हो गया था। जिह्वा में भी बिलकुल रक्त का अभाव हो गया था, वह ऐसी दिखाई देती थी जैसा वट वृक्ष का अथवा पलाश (ढाक) का पत्ता हो या सूखे हुए शाक का पत्ता हो।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की ग्रीवा, चिबुक, ओंठ और जिह्वा का उपमा अलङ्कार से वर्णन किया गया है । ग्रीवा में भी अन्य अवयवों के समान मांस और रुधिर का बिलकुल अभाव हो गया था । अतः वह स्वभावतः लम्बी दिखाई देती थी। सूत्रकार ने उसकी उपमा लम्बे मुख वाले सुराई आदि पात्रों से दी है। इसके लिए सूत्र में एक 'उच्चरथापनक' पद आया है, जो इसी प्रकार का एक पात्र होता है ।

जो चिबुक कभी मांस और रुधिर से परिपूर्ण था उसकी आज यह दशा हो गई थी जैसी एक सूखे हुए तुम्बे के या हकुब (एक प्रकार का वनस्पति) के फल की होती है अथवा वह ऐसी दिखाई देती थी जैसे एक आम की गुठली हो।

जो ओंठ कभी बिम्बफल के समान रक्त थे वे तप के कारण सूखकर बिलकुल विवर्ण हो गये थे। उनकी आकृति अब इस प्रकार हो गई थी जैसी श्लेष्म और सूखी हुई मेंहदी की गुटिका होती है। जिह्वा भी सूख कर वट वृक्ष के पत्ते के समान अथवा पलाश (ढाक) के पत्ते के समान नीरस और रूखी हो गई थी।

यह सब तप आत्म-शुद्धि के ही लिये होता है। यह भी इस वर्णन से सिद्ध होता है कि उत्कृष्ट तप ही आत्म-शुद्धि की सामर्थ्य रखता है और इसीके द्वारा कर्मों की निर्जरा भी हो सकती है। यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि तप सदा सम्यक् ज्ञान और सम्यग् दर्शन पूर्वक ही सिद्ध हो सकता है । जब तक सम्यक् ज्ञान और सम्यग् दर्शन न हो तब तक केवल तप से कोई भी मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के नाक आदि अङ्गों के विषय में कहते हैं:—

धन्नस्स नासाए से जहा अंबग-पेसियाति वा अंबाडग-पेसियाति वा मातुलुंग-पेसियाति वा तरुणिया० एवा-

मेव० । धन्नस्स अच्छीण० से जहा० वीणा-छिड्डेति वा वद्धीसग-छिड्डेति वा पाभातिय-तारिगा इ वा एवामेव० । धन्नस्स कण्णाणं० से जहा० मूला-छल्लियाति वा वालुक० कारेल्लय-छल्लियाति वा एवामेव० । धन्नस्स सीसस्स से जहा० तरुणग-लाउएति वा तरुणग-एलालुयत्ति वा सिण्हालएति वा तरुणए जाव चिट्ठति एवामेव धन्नस्स अणगारस्स सीसं सुक्कं लुक्खं णिम्मंसं अट्ठि-चम्म-च्छिरत्ताए पन्नायाति णो चेव णं मंस-सोणियत्ताए, एवं सव्वत्थ, णवरं उदरभायण-कण्ण-जीहा-उट्ठा एएसिं अट्ठी ण भन्नाति चम्मच्छिरत्ताए पण्णाय इति भन्नति ।

धन्यस्य नासिकायाः० अथ यथानामकाम्रक-पेशिकेति वाम्रातक-पेशिकेति वा मातुलुङ्ग-पेशिकेति वा तरुणिका० एवमेव० । धन्यस्याक्ष्णोः० अथ यथानामकं वीणा-छिद्रमिति वा बद्धीसक-छिद्रमिति वा प्राभातिक-तारकेति वा, एवमेव० । धन्यस्य कर्णयोः० अथ यथानामका मूल-छल्लिकेति वा वालुक-छल्लिकेति वा कारेल्लक-छल्लिकेति वा, एवमेव० । धन्यस्य शीर्षकस्य० अथ यथानामकं तरुणकालाबुरिति वा तरुणकालुकमिति वा सिण्हालकमिति वा तरुणकं यावत्तिष्ठति, एवमेव० धन्यस्यानगारस्य शीर्षं शुष्कं रूक्षं निर्मांसमस्थि-चर्म-शिरावत्तया प्रज्ञायते नो चैव नु मांस-शोणितवत्तया । एवं सर्वत्र नवरमुदरभाजन-कर्ण-जिह्वौष्ठेषु (एतेषु) अस्थीति (पदं) न भण्यते, चर्म-शिरावत्तया

प्रज्ञायन्त इति भण्यते ।

पदार्थान्वयः—धन्नस्स–धन्य अनगार की नासाए–नासिका तप-तेज से ऐसी हो गई थी से जहा०–जैसी अंबगपेसियाति वा–आम की फांक होती है अथवा अंबाडगपेसियाति वा–अम्रातक-अम्बाडा की फांक होती है अथवा मातुलुंगपेसियाति वा–मातुलुङ्ग–बीजपूरक फल की फांक होती है जो तरुणिया–कोमल ही काट कर धूप में सुखा दी गई हो एवामेव०–यही दशा धन्य अनगार की नासिका की भी हो गई थी । धन्नस्स–धन्य अनगार की अच्छीणं०–आंखों की यह दशा हो गई थी से जहा०–जैसे वीणाछिड्डेति–वीणा के छिद्र की होती है अथवा बद्धीसगछिड्डेति वा–बद्धीसक नाम वाले वाद्य विशेष के छिद्र की होती है अथवा पाभातियतारगा इ वा–प्रभात समय का तारा होता है एवामेव०–इसी प्रकार धन्य अनगार की आंखें भीतर धँस गई थीं । धन्नस्स–धन्य अनगार के कण्णाणं–कानों की यह दशा हो गई थी से जहा०–जैसे मूला-छल्लियाति वा–मूली का छिल्का होता है अथवा वालुक०–चिर्भटी की छाल होती है अथवा कारेल्लय-छल्लियाति वा–करेले का छिल्का होता है एवामेव०–इसी प्रकार धन्य अनगार के कान भी सूख गये थे । धन्नस्स–धन्य अनगार के सीसस्स–शिर ऐसा हो गया था से जहा०–जैसे तरुणगलाउएति वा–कोमल तुम्बक अथवा तरुणगएलालुएति वा–कोमल आलू अथवा सिण्हालएति वा–सिस्तालक–सेफालक नामक फल विशेष जो तरुणए–कोमल जाव–यावत्–तोड़कर धूप में कुम्हलाया हुआ चिट्ठति–रहता है एवामेव०–इसी प्रकार धन्नस्स–धन्य अनगार का सीसं–शिर सुक्कं–शुष्क हो गया लुक्खं–रूक्ष हो गया णिम्मंसं–मांस रहित हो गया और केवल अट्ठिचम्मच्छिरत्ताए–अस्थि, चर्म और नासा-जाल के कारण पन्नायति पहचाना जाता था नो चेव णं–न कि मंससोणियत्ताए–मांस और रुधिर के कारण एवं–इसी प्रकार सव्वत्थ–सब अङ्गों के विषय में जानना चाहिए णवरं–विशेषता इतनी है कि उदरभायण–उदर-भाजन कन्न–कान जीहा–जिह्वा उट्ठा–ओंठ एएसि–इनके विषय में अट्ठी–'अस्थि' यह पद ण भन्नति–नहीं कहा जाता, क्योंकि इनमें अस्थि नहीं होती अतः केवल चम्मच्छिरत्ताए–चर्म और नासा-जाल से पण्णाय इति–जाने जाते थे इस प्रकार भन्नति–कहना चाहिए । अर्थात् जिन स्थानों में अस्थि नहीं होती उनके विषय में केवल चर्म

और शिरा वाले होने से इतना ही कहना चाहिए।

मूलार्थ—धन्य अनगार की नासिका तप के कारण सूख कर ऐसी हो गई थी जैसी एक आम, आम्रातक या मातुलुंग फल की फांक कोमल २ काट कर धूप में सुखा देने से हो जाती है। धन्य अनगार की आंखें इस प्रकार दिखाई देती थीं जैसा वीणा या वद्धीसग (वाद्य विशेष) का छिद्र हो अथवा प्रभात काल का टिमटिमाता हुआ तारा हो। इसी तरह उनकी आंखें भी भीतर धँस गई थीं। धन्य अनगार के कान ऐसे हो गये थे जैसे मूली का छिल्का होता है अथवा चिर्भटी की छाल होती है या करेले का छिल्का होता है। जिस प्रकार ये सूख कर मुरझा जाते हैं इसी प्रकार उनके कान भी मुरझा गये थे। धन्य अनगार का शिर ऐसा हो गया था जैसा कोमल तुम्बक, कोमल आलू और सेफालक धूप में रखे हुए सूख जाते हैं इसी प्रकार उनका शिर सूख गया था, रूखा हो गया था और उसमें केवल अस्थि, चर्म और नासा-जाल ही दिखाई देता था किन्तु मांस और रुधिर नाममात्र के लिये भी शेष नहीं रह गया था। इसी प्रकार सब अङ्गों के विषय में जानना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि उदर-भाजन, कान, जिह्वा और ओंठ इनके विषय में 'अस्थि' नहीं कहना चाहिए, किन्तु केवल चर्म और नासा-जाल से ही ये पहचाने जाते थे ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि इन अङ्गों में अस्थि नहीं होती।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की नासिका, कान, आंखें और शिर का वर्णन पूर्वोक्त अङ्गों के समान ही उपमा अलङ्कार के द्वारा किया गया है। शेष सब अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट कर दिया गया है।

इस सूत्र में अनेक प्रकार के कन्द, मूल और फलों से उपमा दी गई है। उनमें से आम्रातक, मूलक, वालुंकी और कारेल्लक ये कन्द और फल विशेषों के नाम हैं। तथा 'आलुकं—कन्द-विशेषस्तच्चानेकप्रकारकं भवति। परिग्रहार्थमेलालुक-मित्युक्तम्।' अर्थात् आलुक एक प्रकार का कन्द होता है, जो आजकल आलू के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार सूत्रकार ने धन्य अनगार के पैर से लेकर शिर तक सब अङ्गों का वर्णन कर दिया है। इसमें विशेषता केवल इतनी ही है कि उयर-भाजन,

जिह्वा, कान और ओठों के साथ 'अस्थि' शब्द का अन्वय नहीं करना चाहिए। शेष सब अङ्गों के साथ "सुक्कं लुक्खं णिम्मंसं—" इत्यादि सब विशेषण लगाने चाहिएं।

अथ सूत्रकार प्रकारान्तर से धन्य अनगार के शरीर का वर्णन करते हैं :—

धन्ने णं अणगारे णं सुक्केणं भुक्खेणं पात-जंघोरुणा विगत-तडिकरालेणं कडि-कडाहेणं, पिट्ठमवस्सिएणं उदर-भायणेणं, जोइज्जमाणेहिं पांसुलि-कडएहिं, अक्ख-सुत्त-मालाति वा गणिज्ज-मालाति वा गणेज्जमाणेहिं, पिट्ठि-करं-डग-संधीहिं, गंगा-तरंग-भूएणं उर-कडग-देस-भाएणं सुक्क-सप्प-समाणाहिं बाहाहिं, सिढिल-कडालीविव चलं-तेहिं य अग्ग-हत्थेहिं, कंपणवातिओ विव वेवमाणीए सीस-घडीए, पव्वाय-वदण-कमले, उब्भड-घडामुहे, उब्बुड्ड-णयणकोसे, जीवं जीवेणं गच्छति, जीवं जीवेणं चिट्ठति, भासं भासिस्सामीति गिलाति३। से जहाणामते इंगाल-सगडियाति वा जहा खंदओ तहा जाव हुयासगे इव भास-रासि-पलिच्छन्ने तवेणं, तेएणं, तवतेयसिरीए उव-सोभेमाणे २ चिट्ठति। (सूत्रम् ३)

धन्यो न्वनगारो नु शुष्केण (बुभुक्षायोगात् रूक्षेण), पाद-जङ्घोरुणा, विकृत-तटिकरालेन कटि-कटाहेन, पृष्ठमवश्रि-तेनोदर-भाजनेन, (निर्मांसतया) दृश्यमानैः पार्श्वस्थि-कटकै रक्षसूत्र-मालेति वा गणित-मालेति वा गण्यमानैः पृष्ठ-करण्डक-

सन्धिभिर्गङ्गा-तरङ्गभूतेनोरः-कटकदेश-भागेन, शुष्क-सर्प-समानाभ्यां बाहुभ्याम्, शिथिल-कटालिकेव चलद्भ्यामग्र-हस्ताभ्याम्, कम्पन-वातिक इव वेपमानया शीर्ष-घट्या (लक्षितः), प्रम्लान-वदन-कमलः, उद्भट-घट-मुखः, उद्वृत्त-नयनकोशः, जीवं जीवेन गच्छति, जीवं जीवेन तिष्ठति, भाषां भाषिष्य इति ग्लायति२। अथ यथानामकेङ्गाल-शकटिकेति वा यथा स्कन्दकस्तथा यावद् हुताशन इव भस्म-राशि-प्रतिच्छन्नस्तपसा, तेजसा, तपस्तेजः-श्रियोपशोभमानस्तिष्ठति । (सूत्रम् ३)

पदार्थान्वयः—धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार णं—दोनों वाक्यालङ्कार के लिए हैं सुक्केणं—मांस आदि के अभाव से सूखे हुए भुक्खेणं—भूख के कारण रूखे पड़े हुए पादजंघोरुणा—पैर, जङ्घा और ऊरु से विगततडिकरालेणं—मांस के क्षीण होने से पार्श्व भागों की अस्थियां नदी के तट के समान भयङ्कर रूप से जिसमें उन्नत हो रही थीं ऐसे कडिकडाहेण—कटिरूप कटाह—कच्छप-पृष्ठ या भाजन विशेष से, पिट्ठमवस्सिएणं—यकृत्, प्लीहा आदि के क्षीण होने से पीठ के साथ मिले हुए उदरभायणेणं—उदर-भाजन से, जोइज्जमाणेहिं—निर्मांस होने से दिखाई देते हुए पांसुलिकडएहिं—पार्श्वस्थि-कटक से, अक्खसुत्तमालाति वा—रुद्राक्ष के दानों की माला अथवा गणिज्जमालाति वा—गिनती की माला के दाने जिस प्रकार गणेज्जमाणेहिं—पृथक् २ गिने जा सकते हैं इसी प्रकार मांस के अभाव से पृथक् २ गिने जाने वाले पिट्ठिकरंडगसंधीहिं—पृष्ठ-करण्डक की सन्धियों से, गंगातरंङ्गभूएणं—गङ्गा नदी की तरङ्गों के समान उरकडगदेसभाएणं—वक्षःस्थल रूपी कटक—वंशदलमय—चटाई के विभाग से सुक्कसप्पसमाणेहिं—सूखे हुए सर्प के समान बाहाहिं—भुजाओं से सिढिलकडालीविव—शिथिल लगाम के समान चलंतेहिं—काँपते हुए अग्गहत्थेहिं—अग्र-हस्त—हाथों से कंपणवातिओ विव—कम्पन-वातिक रोग वाले पुरुष के समान वेवमाणीए—कम्पायमान सीसघडीए—शिर रूपी घटी से युक्त वह धन्य अनगार पव्वायवदणकमले—मुरझाए हुए मुख वाला उब्भडघडामुहे—ओंठों के क्षीण होने से भयङ्कर घट के मुख के समान मुख-कमल वाला उव्वुडणयणकोसे—जिसके नयन-

कोश भीतर घुस गये थे जीवं—जीवन को जीवेणं—जीव की शक्ति से गच्छति—चलाता था न कि शरीर की शक्ति से जीवं जीवेणं चिट्ठति—जीव की ही शक्ति से खड़ा होता था भासं—भाषा भासिस्सामि—कहूंगा इति—विचार मात्र से भी गिलाति—ग्लान हो जाता था से—अथ जहा—जैसे खंदओ—स्कन्धक जाव—यावत् भासरासिपलिच्छने—भस्म की राशि से ढके हुए हुयासणे—हुताशन—अग्नि के इव—समान तवेणं—तप तेएणं—तेज और तवतेयसिरीए—तप और तेज की शोभा से उवसोभेमाणे—शोभायमान होता हुआ चिट्ठति—विराजता है। सूत्रं ३—तीसरा सूत्र समाप्त हुआ।

मूलार्थ—धन्य अनगार मांस आदि के अभाव से सूखे हुए, भूख के कारण रूखे पैर, जङ्घा और ऊरु से, भयङ्कर रूप से प्रान्त भागों में उन्नत हुए कटि-कटाह से, पीठ के साथ मिले हुए उदर-भाजन से, पृथक् २ दिखाई देती हुई पसलियों से, रुद्राक्ष-माला के समान स्पष्ट गिनी जाने वाली पृष्ठ-करण्डक (पीठ के उन्नत-प्रदेशों) की सन्धियों से, गङ्गा की तरंगों के समान उदर-कटक के प्रान्त भागों से, सूखे हुए सांप के समान भुजाओं से, घोड़े की ढीली लगाम के समान चलते हुए हाथों से, कम्पनवायु रोग वाले पुरुष के शरीर के समान कांपती हुई शीर्ष-घटी से, मुरझाए हुए मुख-कमल से क्षीण ओष्ठ होने के कारण घड़े के मुख के समान विकराल मुख से और आंखों के भीतर धँस जाने के कारण इतना कृश हो गया था कि उसमें शारीरिक बल बिलकुल भी बाकी नहीं रह गया था। वह केवल जीव के बल से ही चलता, फिरता और खड़ा होता था। थोड़ा सा कहने के लिये भी वह स्वयं खेद मानता था। जिस प्रकार एक कोयलों की गाड़ी चलते हुए शब्द करती है, इसी प्रकार उसकी अस्थियां भी चलते हुए शब्द करती थीं। वह स्कन्दक के समान हो गया था। भस्म से ढकी हुई आग के समान वह भीतर से दीप्त हो रहा था। वह तेज से, तप से और तप-तेज की शोभा से शोभायमान होता हुआ विचरता था।

टीका—इस एक ही सूत्र में प्रकारान्तर से धन्य अनगार के सब अवयवों का वर्णन किया गया है। धन्य अनगार के पैर जङ्घा और ऊरु मांस आदि के अभाव से बिलकुल सूख गये थे और निरन्तर भूखे रहने के कारण बिलकुल रूक्ष हो गये थे। चिकनाहट उनमें नाम-मात्र के लिये भी शेष नहीं थी। कटि मानो कटाह (कच्छप की पीठ अथवा भाजन विशेष—हलवाई आदियों की बड़ी २ कड़ाई)

था । वह मांस के क्षीण होने से तथा अस्थियों के ऊपर उठ जाने से इतना भयङ्कर प्रतीत होता था जैसे ऊंचे २ नदी के तट हों । पेट बिलकुल सूख गया । उसमें से यकृत् और प्लीहा भी क्षीण हो गये थे । अतः वह स्वभावतः पीठ के साथ मिल गया था । पसलियों पर का भी मांस बिलकुल सूख गया था और एक २ साफ २ गिनी जा सकती थी । यही हाल पीठ के उन्नत प्रदेशों का भी था। वे भी रुद्राक्ष-माला के दानों के समान सूत्र में पिरोए हुए जैसे अलग २ गिने जा सकते थे । उर के प्रदेश ऐसे दिखाई देते थे, जैसी गङ्गा की तरङ्गें हों । भुजाएँ सूख कर सूखे हुए साँप के समान हो गई थीं । हाथ अपने वश में नहीं थे और घोड़े की ढीली लगाम के समान अपने आप ही इधर-उधर हिलते रहते थे । शिर की स्थिरता भी लुप्त हो गई थी । वह शक्ति से हीन हो कर कम्पन-वायु रोग वाले पुरुष के शरीर के समान कांपता ही रहता था । इस अत्युग्र तप के कारण से जो मुख कभी खिले हुए कमल के समान लहलहाता था अब मुरझा गया था । ओंठ सूखने के कारण नहीं के समान हो गये थे। इससे मुख फूटे हुए घड़े के मुख के समान विकराल हो गया था। उनकी दोनों आंखें बिलकुल भीतर धँस गई थीं । शारीरिक बल बिलकुल शिथिल हो गया था और केवल जीव-शक्ति से ही चलते थे अथवा खड़े होते थे । इस प्रकार सर्वथा दुर्बल होने के कारण उनकी यह दशा हो गई थी कि किसी प्रकार की बात-चीत करने में में भी उनको स्वयं खेद प्रतीत होता था और जब कुछ कहते भी थे तो अत्यन्त कष्ट के साथ । शरीर साधारणतः इस प्रकार खचपचा गया था कि जब वे चलते थे तो अस्थियों में परस्पर रगड़ लगने के कारण चलती हुई कोयलों की गाड़ी के समान शब्द उत्पन्न होने लगता था । कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार स्कन्दक का शरीर तप के कारण क्षीण हो गया था । इसी प्रकार धन्य अनगार का शरीर भी हो गया था । किन्तु शरीर क्षीण होने पर भी उनकी आत्मिक-दीप्ति बढ़ रही थी और वे इस प्रकार दिखाई देते थे जैसे भस्म से आच्छादित अग्नि होती है । उनका आत्मा तप से, तेज से और इनसे उत्पन्न कान्ति से अलौकिक सुन्दरता धारण कर रहा था ।

इस सूत्र में कुछ एक पदों की व्याख्या हमें आवश्यक प्रतीत होती है । अतः पाठकों की सुविधा के लिए हम उनकी वृत्तिकार ने जो व्याख्या की है उसको यहां दे देते हैं:—

'उदरकडगदेसभाएणं' इति–उदर एव कटकस्य–वंशदलमयस्य देशभागो विभागः । 'सिढिलकडालीविव' इति शिथिला कटालिका–अश्वानां मुखसंयमनोपकरण-विशेषो लोहमयस्तद्वत् । 'उब्भडघडामुहे त्ति' उद्भटं–विकरालं क्षीणप्रायदशनच्छदत्वाद् घटकस्येव मुखं यस्य स तथा ।'

यहां यह शङ्का उपस्थित होती है कि 'उद्भटघटमुखः' इस कथन से मुख पर मुख-पत्ती बंधी हुई तो सिद्ध नहीं होती ? समाधान में कहा जाता है कि यहां पर सूत्रकार का तात्पर्य केवल तप के कारण क्षीण शरीर के वर्णन से ही है, धर्मोपकरणों के वर्णन से नहीं । यदि वे शरीर के अन्य धर्मोपकरणों का वर्णन करते और इस का न करते तो यह शङ्का उपस्थित हो सकती थी । किन्तु यहां तो किसी का भी वर्णन नहीं मिलता । उपकरणों का वर्णन जब वे अनशन के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गये, तब किया गया है । वहां उनके वस्त्र और पात्रों का उल्लेख मिलता है । अतः सिद्ध यह हुआ कि यहां सूत्रकार को उनका केवल शारीरिक वर्णन ही अभिप्रेत था । यदि इस प्रकार न माना जाय तो उनके कटि-पट्ट आदि अङ्गों के वर्णन के साथ चौलपट्ट आदि का भी वर्णन अवश्य मिलता । इस प्रकार तो उपस्थ इन्द्रिय के वर्णन न करने से लोग यह भी कहने लगेंगे कि धन्य अनगार की जननेन्द्रिय भी नहीं थी । अतः इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि धन्य अनगार के मुख पर धर्म-ध्वज (मुखपत्ती) सदैव बंधी रहती थी ।

कुछ एक हस्त-लिखित प्रतियों में कुछ पाठ-भेद भी मिलता है । यहां उनका देना उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि किसी में मेघकुमार का और किसी में स्कन्धक का उदाहरण दिया गया है । जो इस विषय में विशेष जानना चाहें, उनको उक्त कुमारों का वर्णन पढ़ना चाहिए ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार की उस समय के अन्य मुनियों में प्रधानता दिखाते हुए कहते हैं :—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे, गुण-सिलए चेतिते, सेणिए राया । तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे परिसा णिग्गया सेणिते

नि० धम्मकहा। परिसा पडिगया । तते णं से सेणिए राया समणस्स० ३ अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदति णमंसति २ एवं वयासी इमंसि णं भंते ! इंदभूति-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समण-साहस्सीणं कतरे अणगारे महा-दुक्कर-कारए चेव महा-णिज्जर-तराए चेव ? एवं खलु सेणिया ! इमासिं इंदभूति-पामोक्खाणं चोद्दसण्हं समण-साहस्सीणं धन्ने अणगारे महा-दुक्कर-कारए चेव महा-णिज्जरतराए चेव । से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चति इमासिं जाव साहस्सीणं धन्ने अणगारे महा-दुक्कर-कारए चेव, महा-णिज्जर० ? एवं खलु सेणिया! तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदी नामं नगरी होत्था। उप्पिं पासायवडिंसए विहरति । तते णं अहं अन्नया कदाति पुव्वाणुपुव्वीए चरमाणे गामानुगामं दुतिज्जमाणे जेणेव काकंदी णगरी जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागते। अहापडिरूवं उग्गहं उ० संजमे जाव विहरामि । परिसा निग्गता। तहेव जाव पव्वइते जाव बिलमिव जाव आहरति । धन्नस्स अणगारस्स पादाणं सरीर-वन्नओ सव्वो जाव उवसोभेमाणे २ चिट्ठति । से तेणट्ठेणं सेणिया ! एवं वुच्चति इमासिं चउदसण्हं साहस्सीणं धन्ने अणगारे महा-दुक्कर-कारए महा-निज्जरताए

चेव । तते णं सेणिए राया समणस्स भगवतो महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ० समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति २ वंदति णमंसति २ जेणेव धन्ने अणगारे तेणेव उवागच्छति २ धन्नं अणगारं तिक्खुत्तो आयाहिणं करेति २ वंदति णमंसति एवं वयासी धण्णेऽसि णं तुमं देवाणु० सुपुण्णे सुकयत्थे कय-लक्खणे सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! तव माणुस्सए जम्म-जीविय-फले तिकट्टु वंदति णमंसति २ जेणेव समणे० तेणेव उवागच्छति २ समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदति णमंसति २ जामेव दिसं पाउब्भूते तामेव दिसं पडिगए । (सूत्रम् ४)

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम्, गुणशैलकं चैत्यम्,श्रेणिको राजा । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीरः समवसृतः । परिषन्निर्गता, श्रेणिको निर्गतः । धर्मः कथितः परिषत्प्रतिगता: । ततो नु स श्रेणिको राजा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वा चैवमवादीत् "एषां भदन्त ! इन्द्रभूति-प्रमुखानांश्चतुर्दशानां श्रमण-सहस्राणां कतरोऽनगारो महा-दुष्कर-कारकश्चैव महा-निर्जरतरकश्चैव ?" "एवं खलु श्रेणिक ! एषामिन्द्रभूति-प्रमुखानांश्चतुर्दशानां श्रमण-सहस्राणां धन्योऽनगारो महादुष्कर-कारकश्चैव

महानिर्जरतरकश्चैव" "अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते एतेषां यावत् सहस्राणां महादुष्कर-कारकश्चैव महा-निर्जरतरकश्चैव ? एवं खलु श्रेणिक ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये काकन्दी नाम नगर्यभूत् । उपरि प्रासादावतंसके विहरति । ततो न्वहमन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्व्या चरन् ग्रामानुग्रामं द्रुतन् यत्रैव काकन्दी नगरी यत्रैव सहस्राम्रवनमुद्यानं तत्रैवोपागतः । यथाप्रतिरूपक-मवग्रहमवगृह्य संयमेन यावद् विहरामि । परिषन्निर्गता । तथैव यावत्प्रव्रजितः । यावद् विलमिव यावदाहारयति । धन्यस्य न्वन-गारस्य पादयोः, शरीरवर्णनं सर्वं यावदुपशोभमानस्तिष्ठति । अथ तेनार्थेन श्रेणिक ! एवमुच्यते–एतेषांश्चतुर्दशानां श्रमण-सहस्राणां धन्योऽनगारो महादुष्कर-कारको महा-निर्जरतरकश्चैव । ततो नु स श्रेणिको राजा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टस्तुष्टो यावत् श्रमणस्य भगवतो महा-वीरस्य त्रिकृत्व आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दति नम-स्यति च, वन्दित्वा नत्वा च यत्रैव धन्योऽनगारस्तत्रैवोपाग-च्छति, उपागत्य धन्यस्यानगारस्य त्रिकृत्व आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा (तं) वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वैवमवा-दीत्–धन्योऽसि त्वं देवानुप्रिय ! सुपुण्यः सुकृतार्थः कृत-लक्षणः सुलब्धन्नु देवानुप्रिय ! त्वया मानुषकं जन्मजीवित-फलमिति-कृत्वा वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वा यत्रैव श्रमणः० तत्रै-वोपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिकृत्वो वन्दति नमस्यति, वन्दित्वा नत्वा च यस्य दिशः प्रादुर्भूत-

स्तामेव दिशं प्रतिगतः । (सूत्रम् ४)

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस काल और तेणं समएणं—उस समय रायगिहे—राजगृह नाम का णगरे—नगर था और उसके बाहर गुणसिलए—गुण-शैलक चेतिते—चैत्य । सेणिए—श्रेणिक नाम का राया—राजा राज्य करता था । तेणं कालेणं—उस काल और तेणं समएणं—उस समय समणे—श्रमण भगवं—भगवान् महावीरे—महावीर स्वामी समोसढे—उस गुणशैलक चैत्य में विराजमान हो गये यह समाचार पाकर परिसा—नगर की जनता णिग्गया—धर्म-कथा सुनने के लिए श्री भगवान् के पास गई सेणिते—श्रेणिक राजा भी नि०—गया धम्मकहा—श्री भगवान् ने धर्म-कथा की और परिसा—परिषद् पडिगया—अपने २ घर वापिस चली गई । तते णं—इसके अनन्तर से—वह सेणिए—श्रेणिक राया—राजा समणस्स—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अंतिए—पास धम्मं—धर्म को सोचा—सुनकर और उसका निसम्म—मनन कर समणं—श्रमण भगवं—भगवान् महावीरं—महावीर की वंदति—वन्दना करता है उनको णमंसति २—नमस्कार करता है, वन्दना और नमस्कार कर एवं—इस प्रकार वयासी कहने लगा भंते—हे भगवन् ! इमासिं—इन इंदभूतिपामोक्खाणं—इन्द्रभूति प्रमुख चोद्दसण्हं—चौदह समणसाहस्सीणं—हजार श्रमणों में कतरे—कौनसा अण-गारे—अनगार महादुक्करकारए चेव—अति दुष्कर क्रिया करने वाला है और महा-णिज्जरतराए चेव—महाकर्मों की निर्जरा करने वाला है ? यह सुनकर श्री भगवान् कहने लगे सेणिया—हे श्रेणिक ! एवं खलु—इस प्रकार निश्चय से इमासिं—इन इंदभूति-पामोक्खाणं—इन्द्रभूति-प्रमुख चोद्दसण्हं—चौदह समणसाहस्सीणं—हजार श्रमणों में धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार महादुक्करकारए—अत्यन्त दुष्कर क्रिया करने वाला है और महाणिज्जरतराए चेव—बड़ा कर्मों की निर्जरा करने वाला है । यह सुनकर श्रेणिक राजा कहने लगा भंते—हे भगवन् ! से—अथ केणट्ठेणं—किस कारण से एवं—इस प्रकार वुच्चति—आप ऐसा कहते हैं कि इमासिं—इन जाव—यावत् इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह साहस्सीणं—हजार अनगारों में धन्ने—धन्य अणगारे—अनगार ही महादुक्कर-कारए चेव—अत्यन्त दुष्कर तप करने वाला और महाणिज्जर०—बड़ा कर्मों की निर्जरा करने वाला है ? उत्तर में श्री भगवान् कहने लगे सेणिया—हे श्रेणिक ! एवं खलु—

इस प्रकार निश्चय से **तेणं कालेणं**–उस काल और **तेणं समएणं**–उस समय **कांकंदी**–काकन्दी **नामं**–नाम वाली **नगरी**–नगरी **होत्था**–थी और वहां धन्य कुमार **उप्पिं**–ऊपर **पासायवडिंसए**–श्रेष्ठ प्रासाद में **विहरति**–विचरण करता था **तते णं**–उसी समय **अहं**–मैं **अन्नया**–अन्यदा **कदाति**–कदाचित् **पुव्वाणुपुव्वीए**–अनुक्रम से **चरेमाणे**–विहार करता हुआ **गामाणुगामं**–एक ग्राम से दूसरे ग्राम में **दूतिज्जमाणे**–विहार करता हुआ **जेणेव**–जहां **काकंदी**–काकन्दी नाम की **णगरी**–नगरी थी **जेणेव**–जहां **सहसंबवणे**–सहस्राम्रवन **उज्जाणे**–उद्यान था **तेणेव**–वहीं **उवागते**–आया **आहापडिरूवं**–यथा-प्रतिरूप **उग्गहं**–अवग्रह लिया और **उ० २**–अवग्रह लेकर **संजमे०**–संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा की भावना करते हुए **जाव**–यावत् **विहरामि**–विचरण करने लगा तब **परिसा**–परिषद् **निग्गता**–धर्म-कथा सुनने के लिए नगर से सहस्राम्रवन में उपस्थित हुई **तहेव**–उसी प्रकार से धन्य अनगार भी आया और धर्म-कथा सुनकर **पव्वइते**–दीक्षित हो गया **जाव**–यावत् उसने कठिन से कठिन तप प्रारम्भ कर दिया और **बिलमिव**–जिस प्रकार सर्प आसानी से बिल में घुस जाता है इसी प्रकार वह बिना किसी लालसा के **आहारेति**–आहार करता है। फिर **धन्नस्स**–धन्य **अणगारस्स**–अनगार के **पादाणं**–पैर मांस और रुधिर से रहित होकर सूख गये इसी प्रकार **सरीरवन्नओ**–सारे शरीर का वर्णन कहना चाहिए। वह **सव्वो जाव**–सब अवयवों के तप-रूप लावण्य से **उवसोभेमाणे**–शोभायमान होता हुआ **चिट्ठति**–विराजमान हो गया। **से**–अथ **तेणट्ठेणं**–इस कारण **सेणिया**–हे श्रेणिक **एवं**–इस प्रकार **वुच्चति**–मैं कहता हूं कि **इमासिं**–इन **चउदसण्हं**–चौदह **साहस्सीणं**–हजार मुनियों में **धन्ने**–धन्य **अणगारे**–अनगार **महादुक्करकारए**–अत्यन्त कठिन तप करने वाला और **महानिज्जरतराए चेव**–सब से श्रेष्ठ कर्मों की निर्जरा करने वाला है **तते**–इसके अनन्तर **णं**–वाक्यालङ्कार के लिये है **से**–वह **सेणिए**–श्रेणिक **राया**–राजा **समणस्स**–श्रमण **भगवतो**–भगवान् **महावीरस्स**–महावीर के **अंतिए**–पास **एयमट्ठं**–इस बात को **सोच्चा**–सुनकर और उसका **णिसम्म**–मनन कर **हट्ठतुट्ठ०**–हृष्ट और तुष्ट होकर **जाव**–यावत **समणं**–श्रमण **भगवं**–भगवान् **महावीरं**–महावीर को **तिक्खुत्तो**–तीन बार **आयाहिणपयाहिणं**–आदक्षिणा और प्रदक्षिणा **करेति २**–करता है और आदक्षिणा और प्रदक्षिणा कर उनकी **वंदति**–वन्दना करता है और **णमंसति २**–नमस्कार करता है और

वन्दना और नमस्कार कर जेणेव–जहां धन्ने–धन्य अणगारे–अनगार था तेणेव–वहीं उवागच्छति २–आता है और आकर धन्नं–धन्य अणगारं–अनगार को तिक्खुत्तो–तीन वार आयाहिणपयाहिणं–आदक्षिणा और प्रदक्षिणा कर वंदति–उनकी वन्दना करता है और णमंसति–उनको नमस्कार करता है । वन्दना और नमस्कार कर एवं–इस प्रकार वयासी–कहने लगा देवाणु०–हे देवानुप्रिय ! तुमं–तुम धण्णेसि–धन्य हो सुपुण्णे–तुम्हारे अच्छे पुण्य हैं सुकयत्थे–तुम कृतार्थ हुए कयलक्खणे–शुभ लक्षणों से युक्त हो देवाणुप्पिया–हे देवानुप्रिय ! माणुसए–मानुष जन्मजीवियफले–जन्म के जीवन का फल तुमने सुलद्धे–अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है तिकट्टु–इस प्रकार स्तुति कर वंदति–उनकी वन्दना करता है और णमंसति–उनको नमस्कार करता है और वन्दना और नमस्कार करके जेणेव–जहां समणे०–श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे तेणेव–वहीं उवागच्छति २–आता है और आकर समणं–श्रमण भगवं–भगवान् महावीरं–महावीर स्वामी की तिक्खुत्तो–तीन वार वंदति–वन्दना करता है और उनको णमंसति–नमस्कार करता है, वन्दना और नमस्कार कर जामेव–जिस दिसं–दिशा से पाउब्भूते–प्रकट हुआ था तामेव–उसी दिसं–दिशा को पडिगए–वापिस चला गया । सूत्रं ४–चौथा सूत्र समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था । उसके बाहिर गुणशैलक नाम का चैत्य या उद्यान था । वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था । उसी काल और उसी समय में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उक्त चैत्य में विराजमान हो गये । नगर की जनता यह सुनकर नगर से बाहर निकली और श्री भगवान् की सेवा में उपस्थित हुई और साथ ही श्रेणिक राजा भी उपस्थित हुआ । श्री भगवान् ने धर्म-कथा सुनाकर सब को सन्तुष्ट किया और सब लोग नगर को वापिस चले गये । श्रेणिक राजा ने इस कथा को सुन कर और उसका मनन कर श्री भगवान् की वन्दना की और उनको नमस्कार किया । फिर वन्दना और नमस्कार कर बोला—"हे भगवन् ! इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में कौनसा श्रमण अत्यन्त कठोर तप का अनुष्ठान करने वाला और सब से बड़ा कर्मों की निर्जरा करने वाला है ?" यह सुनकर श्री भगवान् कहने लगे—"हे श्रेणिक ! इन्द्रभूति-प्रमुख चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार अत्यन्त कठोर तप का अनुष्ठान करने वाला और सब से बड़ा

कर्मों की निर्जरा करने वाला है।" (श्री भगवान् के मुख से यह सुनकर फिर श्रेणिक राजा ने कहा) "हे भगवन्! किस कारण से आप कहते हैं कि चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार ही कठोर तप करने वाला और सब से बड़ा कर्मों की निर्जरा करने वाला है।" (श्रेणिक राजा के इस प्रश्न को सुनकर समाधान करते हुए श्री भगवान् कहने लगे) "हे श्रेणिक! उस काल और उस समय में एक काकन्दी नाम वाली नगरी थी। उसके बाहर सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था। (यह उद्यान सब ऋतुओं में हरा-भरा रहता था। काकन्दी नगरी म भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी रहती थी। वह धन-धान्य से परिपूर्ण थी। उसका धन्य नाम वाला एक पुत्र था, जो यौवनावस्था में विवाहित होकर) श्रेष्ठ प्रासादों में सुख का अनुभव करता हुआ विचरण करता था। इसी समय कभी पूर्वानुपूर्वी से विचरता हुआ, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करता हुआ मैं जहां काकन्दी नगरी थी और जहां सहस्राम्रवन उद्यान था वहीं पहुंच गया और यथा प्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा की भावना करते हुए वहीं पर विचरने लगा। नगरी की जनता यह सुनकर वहां आई और मैंने उनको धर्म-कथा सुनाई। धन्य अनगार के ऊपर इसका विशेष प्रभाव पड़ा और वह तत्काल ही गृहस्थ को छोड़ कर साधु-धर्म में दीक्षित हो गया। (उसने तभी से कठोर-व्रत धारण कर लिया और केवल आचाम्ल से पारण करने लगा। वह जब आहार और पानी भिक्षा से लाता था तो मुझको दिखाकर) जिस प्रकार सर्प बिल में बिना किसी परिश्रम के घुस जाता है इसी प्रकार बिना किसी लालसा के आहार करता था। धन्य अनगार के पादों से लेकर सारे शरीर का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए। उसके सब अङ्ग तप-रूप लावण्य से शोभित हो रहे थे। इसीलिए हे श्रेणिक! मैंने कहा है कि चौदह हजार श्रमणों में धन्य अनगार महातप और महा-कर्मों की निर्जरा करने वाला है। जब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुख से श्रेणिक राजा ने यह सुना और इस पर विचार किया तो हृदय में अत्यन्त प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ और इस प्रकार प्रफुल्लित होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन वार आदक्षिणा और प्रदक्षिणा की, उनकी वन्दना की और नमस्कार किया, वन्दना और नमस्कार कर जहां धन्य अनगार था वहां गया। वहां जाकर उसने धन्य अनगार

की तीन बार आदक्षिणा और प्रदक्षिणा की । वन्दना और नमस्कार किया तथा वन्दना और नमस्कार कर कहने लगा कि हे देवानु-प्रिय ! तुम धन्य हो, श्रेष्ठ पुण्य वाले हो, श्रेष्ठ कार्य करने वाले हो, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त हो और तुमने ही इस मनुष्य जीवन का श्रेष्ठ फल प्राप्त किया है । इस प्रकार स्तुति कर और फिर उनको नमस्कार कर वह जहां श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहीं आगया । वहां श्रमण भगवान् को तीन बार नमस्कार किया और वन्दना की । फिर जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया । इस प्रकार चौथा सूत्र समाप्त हुआ ।

टीका—इस सूत्र का अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट हो गया है । अतः इस विषय में कुछ भी वक्तव्य शेष नहीं है ।

हां, अब वक्तव्य इतना अवश्य है कि इस सूत्र से हमें तीन शिक्षाएं मिलती हैं । उनमें से पहली तो यह है कि जिसमें जो गुण हों उनका निःसङ्कोच-भाव से वर्णन करना चाहिए । और गुणवान् व्यक्ति का धन्यवाद आदि से उत्साह बढ़ाना चाहिए । जैसे यहां पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने किया । उन्होंने धन्य अनगार के कठोर तप का यथातथ्य वर्णन किया और उसको उसके लिये धन्य-वाद भी दिया । दूसरी शिक्षा हमें यह मिलती है कि एक बार जब संसार से ममत्व-भाव छोड़ दिया तो फिर सम्यक् तप के द्वारा आत्म-शुद्धि अवश्य कर लेनी चाहिए । यही संसार के इतने सुखों को त्यागने का फल है । जो व्यक्ति साधु बन कर भी ममत्व में ही फंसा रहे उसको उस त्याग से किसी प्रकार की भी सफलता की आशा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि इस प्रकार करने से तो वह कहीं का नहीं रहता और उसका इह-लोक और पर-लोक दोनों ही बिगड़ जाते हैं । यहां धन्य अनगार ने हमारे सामने कितना अच्छा उदाहरण रखा है कि उन्होंने जब एक बार गृहस्थ के सारे सुखों को त्याग साधु-वृत्ति ग्रहण कर ली तो उसको सफल बनाने के लिये उत्कृष्ट से उत्कृष्ट तप किया और लोगों को बता दिया कि किस प्रकार तप के द्वारा आत्म-शुद्धि होती है और कैसे उक्त तप से आत्मा सुशोभित किया जाता है । तीसरी शिक्षा जो हमें इससे मिलती है वह यह है कि जब किसी व्यक्ति की स्तुति करनी हो तो उसमें वास्तव में जितने गुण हों उन सब का वर्णन करना



चाहिये । कहने का अभिप्राय यह है कि जितने गुण उस व्यक्ति में विद्यमान हों उन्हीं को लक्ष्य में रख कर स्तुति करना उचित है न कि और असत्य गुणों का आरोपण करके भी क्योंकि ऐसी स्तुति प्रशंसनीय होने के बजाय हास्यास्पद बन जाती है । ऐसी स्तुति हास्यास्पद ही नहीं बल्कि इससे स्तुति करने वाले को दोष भी लगता है । अतः झूठी प्रशंसा कर निरर्थक ही किसी को बाँसों पर नहीं चढ़ाना चाहिए । यही तीन शिक्षाएं हैं, जो हमें इस सूत्र से मिलती हैं । इनके द्वारा उन्नति की ओर बढ़ता हुआ आत्मा सुशोभित होता है ।

अब सूत्रकार धन्य अनगार के तप के अनन्तर की दशा का वर्णन करते हैं :—

तए णं तस्स धण्णस्स अणगारस्स अन्नया कयाति पुव्व-रत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं० इमेयारूवे अब्भत्थिते ५ एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं जहा खंदओ तहेव चिंता आपुच्छणं थेरेहिं सद्धि विउलं दुरूहंति मासिया संलेहणा नवमासपरियातो जाव कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम जा णव य गेविज्ज विमाणपत्थडे उड्ढं दूरं वीतिवतित्ता सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववन्ने । थेरा तहेव उयरंति जाव इमे से आयारभंडए । भंते त्ति भगवं गोतमे तहेव पुच्छति जहा खंदयस्स । भगवं वागरेति जाव सव्वट्ठसिद्धे विमाणे उववण्णे । धन्नस्स णं भंते ! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ? गोतमा ! तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पन्नत्ता । से णं भंते ! ततो देव-लोगाओ कहिं गच्छिहिंति ? कहिं उववज्जिहिंति ? गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति ५। तं एवं खलु जंबू ! समणेणं

जाव संपत्तेणं पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पन्नत्ते । (सूत्रं ५) पढमं अज्झयणं समत्तं ।

ततो नु तस्य धन्यस्यानगारस्यान्यदा कदाचित् पूर्व-रात्रापरात्र-काले धर्म-जागरिकैतद्रूपाध्यात्मिका ५ । एवं खल्वह-मनेनौदारेण यथा स्कन्दकः, तथैव चिन्तापृच्छणा। स्थविरैः सार्धं विपुलमारोहति । मासिकी संलेखना, नवमास-पर्यायः, यावत् काल-मासे कालं कृत्वोर्ध्वं चन्द्र० यावन्नव च ग्रैवेयक-विमान-प्रस्तटा-दूर्ध्वं दूरं व्यतिक्रम्य सर्वार्थसिद्धे विमाने देवतयोत्पन्नः । स्थविरा-स्तथैवावतरन्ति । यावदिमान्याचारभण्डकानि । भदन्तेति गौतम-स्तथैव पृच्छति । यथा स्कन्धस्य भगवान् व्याकरोति यावत्सर्वार्थ-सिद्धे विमाने उत्पन्नः । "धन्यस्य नु भदन्त ! देवस्य कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता ?" "गौतम ! त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा स्थितिः प्रज्ञप्ता ।" "स तु भदन्त ! ततो देवलोकात् कुत्र गमिष्यतीति ? कुत्रोत्पत्स्यतीति ?" "गौतम ! महाविदेहे वासे सेत्स्यतीति ।"

तदेवं खलु जम्बु ! श्रमणेन यावत्संप्राप्तेन प्रथमस्याध्य-यनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः । (सूत्रम् ५) प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ।

पदार्थान्वयः—तए–इसके अनन्तर णं–वाक्यालङ्कार के लिए है तस्स–उस धन्नस्स–धन्य अणगारस्स–अनगार को अन्नया–अन्यदा कयाति–किसी समय पुव्वरत्तावरत्तकाले–मध्य-रात्रि के समय धम्मजागरियं–धर्म-जागरण करते हुए इमेयारूवे–इस प्रकार के अब्भत्थिते–आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुए अहं–मैं एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से इमेणं–इस ओरालेणं–उदार तप के कारण से जहा–जैसा खंदओ–स्कन्दक हुआ उसी प्रकार हो जाऊं और तदनुसार ही उसको जैसी स्कन्दक को हुई थी तहेव–उसी प्रकार चिंता–अनशन करने की चिन्ता

उत्पन्न हुई उसी प्रकार **आपुच्छणं**—श्री भगवान् से पूछा और पूछकर **थेरेहिं**—स्थविरों के **सद्धिं**—साथ **विउले**—विपुलगिरि पर **दुरूहंति**—चढ़ गया **मासिया**—मासिकी **संलेहणा**—संलेखना की **नवमास**—नौ महीने तक **परियातो**—संयम-पर्याय का पालन किया **जाव**—यावत् **कालमासे**—मृत्यु के समय **कालं किच्चा**—काल के द्वारा **उड्ढं**—ऊंचे **चंदिम**—चन्द्रमा से **जाव**—यावत् **य**—पुनः **णव**—नव **गेविज्जविमाण-पत्थडे**—ग्रैवेयक विमानों के प्रस्तट से **उड्ढं**—ऊंचे **दूरं**—दूर **वीतिवत्तित्ता**—व्यतिक्रम करके **सव्वट्ठसिद्धे**—सर्वार्थसिद्ध **विमाणे**—विमान में **देवत्ताए**—देव-रूप से **उववन्ने**—उत्पन्न हो गया । **थेरा**—स्थविर **तहेव**—उसी प्रकार **उयरंति**—विपुलगिरि से उतर गये और **जाव**—यावत् श्री भगवान् से कहने लगे कि हे भगवन् **से**—उस धन्य अनगार के **इमे**—ये **आयारभंडए**—आचार-भण्डोपकरण हैं अर्थात ये उसके वस्त्र-पात्र आदि उपकरण हैं इसके अनन्तर **भगवं**—भगवान् **गोतमे**—गौतम **तहेव**—उसी प्रकार **पुच्छति**—श्री भगवान् से पूछते हैं **जहा**—जैसे **खंदयस्स**—स्कन्दक के विषय में पूछा था **भगवं**—श्री भगवान् इसके उत्तर में **वागरेति**—प्रतिपादन करते हैं कि **जाव**—यावत् धन्य अनगार **सव्वट्ठसिद्धे**—सर्वार्थसिद्ध **विमाणे**—विमान में **उववण्णे**—देव-रूप से उत्पन्न हो गया । **णं**—पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिये है **भंते !**—हे भगवन् ! इस प्रकार से फिर गौतम स्वामी जी ने श्री भगवान् से पूछा **धन्नस्स**—धन्य **देवस्स**—देव की **केवतियं**—कितने **कालं**—काल की **ठिती**—स्थिति **पण्णत्ता**—प्रतिपादन की है ? उत्तर में श्री भगवान् कहते हैं कि **गोयमा !**—हे गौतम **तेत्तीसं**—तेतीस **सागरोवमाइं**—सागरोपम की **ठिती**—स्थिति **पन्नत्ता**—प्रतिपादन की है । **णं**—पूर्ववत् **भंते**—हे भगवन् ! **से**—वह धन्य देव **ततो**—उस **देवलोगाओ**—देवलोक से च्युत होकर **कहिं**—कहां पर **गच्छिहिंति**—जायगा ? **कहिं**—कहां **उववज्जिहिंति**—उत्पन्न होगा ? भगवान् इसके उत्तर में कहते हैं **गोयमा**—हे गौतम ! **महाविदेहे**—महाविदेह **वासे**—क्षेत्र में **सिज्झिहिति ५**—सिद्ध होगा । **तं**—सो **एवं**—इस प्रकार **खलु**—निश्चय से **जंबू**—हे जम्बू ! **समणेणं**—श्रमण भगवान् ने **जाव**—यावत् जो **संपत्तेणं**—मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं **पढमस्स**—(तृतीय वर्ग के) प्रथम **अज्झयणस्स**—अध्ययन का **अयमट्ठे**—यह अर्थ **पन्नत्ते**—प्रतिपादन किया है । **सूत्रं ५**—पञ्चम सूत्र समाप्त हुआ । **पढमं**—प्रथम **अज्झयणं**—अध्ययन **समत्तं**—समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—तब उस धन्य अनगार को [illegible] में

धर्म-जागरण करते हुए इस प्रकार के आध्यात्मिक विचार उत्पन्न हुए कि मैं इस उत्कृष्ट तप से कृश हो गया हूं अतः प्रभात काल ही स्कन्दक के समान श्री भगवान् से पूछकर स्थविरों के साथ विपुलगिरि पर चढ़कर अनशन व्रत धारण कर लूं। उसने तदनुसार ही श्री भगवान् की आज्ञा ली और विपुलगिरि पर अनशन व्रत धारण कर लिया। इस प्रकार एक मास तक इस अनशन व्रत को पूर्ण कर और नौ मास तक दीक्षा का पालन कर वह काल के समय काल करके चन्द्र से ऊंचे यावत् नव-ग्रैवेयक विमानों के प्रस्तटों को उल्लङ्घन कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव-रूप से उत्पन्न हो गया। तब स्थविर विपुलगिरि से नीचे उतर आये और भगवान् से कहने लगे कि हे भगवन्! ये उस धन्य अनगार के वस्त्र-पात्र आदि उपकरण हैं। तब भगवान् गौतम ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से प्रश्न किया कि हे भगवन्! धन्य अनगार समाधि से काल कर कहां उत्पन्न हुआ है। भगवान् ने इसके उत्तर में कहा कि हे गौतम! धन्य अनगार समाधि-युक्त मृत्यु प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव-रूप से उत्पन्न हुआ। गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि हे भगवन्! धन्य देव की वहां कितने काल की स्थिति है? भगवान् ने उत्तर दिया कि तेतीस सागरोपम धन्य देव की वहां स्थिति है। गौतम ने प्रश्न किया कि देवलोक से च्युत होकर वह कहां जायगा और कहां पर उत्पन्न होगा? भगवान् ने कहा कि वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो निर्वाण-पद प्राप्त कर सब दुःखों से विमुक्त हो जायगा।

श्री सुधर्मा स्वामी जी कहते हैं कि हे जम्बू! इस प्रकार मोक्ष को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् ने तृतीय वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है। पांचवां सूत्र समाप्त। प्रथमाध्ययन समाप्त हुआ।

टीका—इस सूत्र में धन्य अनगार की अन्तिम समाधि का वर्णन किया गया है और उसके लिए सूत्रकार ने धन्य अनगार की स्कन्दक संन्यासी से उपमा दी है। इस प्रकार तप करते हुए धन्य अनगार को एक समय मध्य-रात्रि में जागरण करते हुए विचार उत्पन्न हुआ कि मुझ में अभी तक उठने की शक्ति विद्यमान है और मेरे धर्माचार्य श्री भगवान् महावीर स्वामी भी अभी तक विद्यमान हैं तो फिर ऐसी सुविधा होने पर भी मैं अनशन व्रत धारण क्यों न कर लूं। इस विचार

के आते ही उन्होंने प्रातः काल ही श्री भगवान् की आज्ञा ली और आत्म-विशुद्धि के लिये पञ्च महाव्रतों का पाठ पढ़ा तथा उपस्थित श्रमण और श्रमणियों से क्षमा प्रार्थना कर तथा-रूप स्थविरों के साथ शनैः २ विपुलगिरि पर चढ़ गये। वहां पहुंच कर उन्होंने कृष्ण-वर्णीय पृथिवी-शिला-पट्ट पर प्रतिलेखना कर दर्भ का संस्तारक बिछाया और पद्मासन लगाकर बैठ गये। फिर दोनों हाथ जोड़े और उनसे शिर पर आवर्तन किया। इस प्रकार पूर्व दिशा की ओर मुख कर 'नमोत्थुणं' के द्वारा पहले सब सिद्धों को नमस्कार किया, फिर उसीसे श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को भी नमस्कार किया और कहा कि हे भगवन्! आप वहीं पर बैठ कर सब कुछ देख रहे हैं अतः मेरी वन्दना स्वीकार करें और मैंने पहले ही आपके समक्ष अष्टादश पापों का त्याग किया था अब मैं आपकी ही साक्षी देकर उनका फिर से जीवन भर के लिये परित्याग करता हूं। इनके साथ ही साथ अब अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का भी परित्याग करता हूं। अपने परम प्रिय शरीर के ममत्व को भी छोड़ता हूं तथा आज से पादोपगमन नामक अनशन व्रत धारण करता हूं। इस प्रकार श्री भगवान् की वन्दना कर और उनको साक्षी कर उक्त प्रण किया और उसीके अनुसार विचरने लगे। उन्होंने सामायिक आदि से लेकर एकादश अङ्गों का अध्ययन किया और एक मास तक अनशन व्रत धारण कर अन्त में समाधि-मरण प्राप्त किया। उनकी सब दीक्षा की अवधि केवल नौ मास हुई, जिस में साठ भक्त अशन छेदन कर आलोचना द्वारा सर्वोत्तम उक्त समाधि-मरण प्राप्त किया।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यहां कहा गया है कि उन्होंने साठ भक्तों का परित्याग किया तो प्रत्येक को जिज्ञासा हो सकती है कि भक्त किसे कहते हैं? उत्तर में कहा जाता है कि प्रत्येक दिन के दो भक्त अर्थात् आहार या भोजन होते हैं। इस प्रकार एक मास के साठ भक्त हो जाते हैं। इसके विषय में वृत्तिकार भी यही लिखते हैं—"प्रतिदिनं भोजनद्वयस्य परित्यागात्त्रिंशता दिनैः षष्टिर्भक्तानां त्यक्ता भवन्ति" अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार जब धन्य अनगार ने एक मास पर्यन्त अनशन धारण किया तो साठ भक्तों के परित्याग में कोई सन्देह ही नहीं रहता। उन भक्तों का परित्याग कर धन्य अनगार स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए यह सब स्पष्ट ही है।

जब समीप रहने वालों ने देखा कि धन्य अनगार अपनी इह-लीला संवरण कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये हैं तो उन्होंने परिनिर्वाण-प्रत्ययक कायोत्सर्ग किया अर्थात् 'परिनिर्वाणम्-मरणं यत्र, यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाण-मेव, तदेव प्रत्ययो–हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययः' भाव यह है कि मृत्यु के अनन्तर जो ध्यान किया जाता है उसको परिनिर्वाण-प्रत्यय कहते हैं । यहां समीपस्थ स्थविरों ने धन्य अनगार की मृत्यु को देखकर कायोत्सर्ग (ध्यान) किया । फिर उनके वस्त्र-पात्र आदि उपकरण उठाकर लाये और श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर और उनको धन्य अनगार के समाधि-मरण का समस्त वृत्तान्त सुना दिया और उनके गुणों का गान किया, उनके उपशम-भाव की प्रशंसा की तथा उनके उक्त वस्त्र आदि उपकरण श्री भगवान् को दिखा दिये ।

इतना सब हो जाने पर श्री गौतम स्वामी ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की वन्दना की और उनसे प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपका विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधि-मरण प्राप्त कर कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ है, वहां कितने काल तक उसकी स्थिति होगी और तदनन्तर वह कहां उत्पन्न होगा ? इसके उत्तर में श्री भगवान् ने कहा कि हे गौतम ! मेरा विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधि-मरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ है, वहां उसकी तेतीस साग-रोपम स्थिति है और वहां से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगा अर्थात् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर परिनिर्वाण-पद प्राप्त कर सब दुःखों का अन्त कर देगा । यह सुनकर श्री गौतम भगवान् परम प्रसन्न हुए ।

इस सूत्र से हमें शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को आलोचना आदि क्रिया करके समाधि-पूर्वक मृत्यु प्राप्त करनी चाहिए जिससे वह सच्चा आराधक होकर मोक्षाधिकारी बन सके ।

इस प्रकार श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! जिस प्रकार मैंने उक्त अध्ययन का अर्थ श्रवण किया है उसी प्रकार तुम्हारे प्रति कहा है अर्थात मेरा यह कथन केवल भगवान् के कथन का अनुवाद मात्र है । इसमें अपनी बुद्धि से कुछ भी नहीं कहा ।

तृतीय वर्ग का प्रथमाध्ययन समाप्त ।

के आते ही उन्होंने प्रातः काल ही श्री भगवान् की आज्ञा ली और आत्म-विशुद्धि के लिये पञ्च महाव्रतों का पाठ पढ़ा तथा उपस्थित श्रमण और श्रमणियों से क्षमा प्रार्थना कर तथा-रूप स्थविरों के साथ शनैः २ विपुलगिरि पर चढ़ गये। वहां पहुंच कर उन्होंने कृष्ण-वर्णीय पृथिवी-शिला-पट्ट पर प्रतिलेखना कर दर्भ का संस्तारक बिछाया और पद्मासन लगाकर बैठ गये। फिर दोनों हाथ जोड़े और उनसे शिर पर आवर्तन किया। इस प्रकार पूर्व दिशा की ओर मुख कर 'नमोत्थुणं' के द्वारा पहले सब सिद्धों को नमस्कार किया, फिर उसीसे श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को भी नमस्कार किया और कहा कि हे भगवन्! आप वहीं पर बैठ कर सब कुछ देख रहे हैं अतः मेरी वन्दना स्वीकार करें और मैंने पहले ही आपके समक्ष अष्टादश पापों का त्याग किया था अब मैं आपकी ही साक्षी देकर उनका फिर से जीवन भर के लिये परित्याग करता हूं। इनके साथ ही साथ अब अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य पदार्थों का भी परित्याग करता हूं। अपने परम प्रिय शरीर के ममत्व को भी छोड़ता हूं तथा आज से पादोपगमन नामक अनशन व्रत धारण करता हूं। इस प्रकार श्री भगवान् की वन्दना कर और उनको साक्षी कर उक्त प्रण किया और उसीके अनुसार विचरने लगे। उन्होंने सामायिक आदि से लेकर एकादश अङ्गों का अध्ययन किया और एक मास तक अनशन व्रत धारण कर अन्त में समाधि-मरण प्राप्त किया। उनकी सब दीक्षा की अवधि केवल नौ मास हुई, जिस में साठ भक्त अशन छेदन कर आलोचना द्वारा सर्वोत्तम उक्त समाधि-मरण प्राप्त किया।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि यहां कहा गया है कि उन्होंने साठ भक्तों का परित्याग किया तो प्रत्येक को जिज्ञासा हो सकती है कि भक्त किसे कहते हैं? उत्तर में कहा जाता है कि प्रत्येक दिन के दो भक्त अर्थात् आहार या भोजन होते हैं। इस प्रकार एक मास के साठ भक्त हो जाते हैं। इसके विषय में वृत्तिकार भी यही लिखते हैं—"प्रतिदिनं भोजनद्वयस्य परित्यागात्त्रिंशता दिनैः षष्टिर्भक्तानां त्यक्ता भवन्ति" अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है। इस प्रकार जब धन्य अनगार ने एक मास पर्यन्त अनशन धारण किया तो साठ भक्तों के परित्याग में कोई सन्देह ही नहीं रहता। उन भक्तों का परित्याग कर धन्य अनगार स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए यह सब स्पष्ट ही है।

अब समीप रहने वालों ने देखा कि धन्य अनगार अपनी इह-लीला संवरण कर स्वर्ग को प्राप्त हो गये हैं तो उन्होंने परिनिर्वाण-प्रत्ययक कायोत्सर्ग किया अर्थात् 'परिनिर्वाणम्-मरणं यत्र, यच्छरीरस्य परिष्ठापनं तदपि परिनिर्वाण-मेव, तदेव प्रत्ययो–हेतुर्यस्य स परिनिर्वाणप्रत्ययः' भाव यह है कि मृत्यु के अनन्तर जो ध्यान किया जाता है उसको परिनिर्वाण-प्रत्यय कहते हैं। यहां समीपस्थ स्थविरों ने धन्य अनगार की मृत्यु को देखकर कायोत्सर्ग (ध्यान) किया। फिर उनके वस्त्र-पात्र आदि उपकरण उठाकर लाये और श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आकर और उनको धन्य अनगार के समाधि-मरण का समस्त वृत्तान्त सुना दिया और उनके गुणों का गान किया, उनके उपशम-भाव की प्रशंसा की तथा उनके उक्त वस्त्र आदि उपकरण श्री भगवान् को दिखा दिये।

इतना सब हो जाने पर श्री गौतम स्वामी ने श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की वन्दना की और उनसे प्रश्न किया कि हे भगवन् ! आपका विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधि-मरण प्राप्त कर कहां गया, कहां उत्पन्न हुआ है, वहां कितने काल तक उसकी स्थिति होगी और तदनन्तर वह कहां उत्पन्न होगा ? इसके उत्तर में श्री भगवान् ने कहा कि हे गौतम ! मेरा विनयी शिष्य धन्य अनगार समाधि-मरण प्राप्त कर सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुआ है, वहां उसकी तेतीस साग-रोपम स्थिति है और वहां से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष प्राप्त करेगा अर्थात् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होकर परिनिर्वाण-पद प्राप्त कर सब दुःखों का अन्त कर देगा। यह सुनकर श्री गौतम भगवान् परम प्रसन्न हुए।

इस सूत्र से हमें शिक्षा प्राप्त होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को आलोचना आदि क्रिया करके समाधि-पूर्वक मृत्यु प्राप्त करनी चाहिए जिससे वह सच्चा आराधक होकर मोक्षाधिकारी बन सके।

इस प्रकार श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू ! जिस प्रकार मैंने उक्त अध्ययन का अर्थ श्रवण किया है उसी प्रकार तुम्हारे प्रति कहा है अर्थात मेरा यह कथन केवल भगवान् के कथन का अनुवाद मात्र है। इसमें अपनी बुद्धि से कुछ भी नहीं कहा।

तृतीय वर्ग का प्रथमाध्ययन समाप्त।

अब सूत्रकार उक्त वर्ग के शेष अध्ययनों का वर्णन करते हैंः—

जति णं भंते ! उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं काकंदीए णगरीए भद्दाणामं सत्थवाही परिवसति अड्ढा० तीसे णं भद्दाए सत्थवाहीए पुत्ते सुणक्खत्ते णामं दारए होत्था अहीण० जाव सुरूवे० पंचधाति-परिक्खित्ते जहा धण्णो तहा वत्तीस दाओ जाव उप्पिं पासायवडेंसए विहरति। तेणं कालेणं २ समोसरणं जहा धन्नो तहा सुणक्खत्तेऽवि णिग्गते जहा थावच्चापुत्तस्स तहा णिक्खमणं जाव अणगारे जाते ईरियासमिते जाव बंभयारी। तते णं सुणक्खत्ते अणगारे जं चेव दिवसं समणस्स भगवतो म० अंतिते मुंडे जाव पव्वतिते तं चेव दिवसं अभिग्गहं। तहेव जाव विलमिव आहारेति संजमेण जाव विहरति। वहिया जणवय-विहारं विहरति। एक्कारसं अंगाइं अहिज्जति संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति। तते णं से सुण० ओरालेणं जहा खंदतो।

यदि नु भदन्त ! उत्क्षेपः। एवं खलु जम्बु ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये काकन्द्यां नगर्यां भद्रा नाम सार्थवाहिनी परिवसति, आढ्या०। तस्या नु भद्रायाः सार्थवाहिन्याः पुत्रः सुनक्षत्रो नाम दारकोऽभूत्। अहीनो यावत्सुरूपः पञ्च-धातृ-

परिक्षिप्तो यथा धन्यस्तथा । द्वात्रिंशद् दातानि यावदुपरि प्रासादावतंशके विहरति । तस्मिन् काले तस्मिन् समये समवशरणम् । यथा धन्यस्तथा सुनक्षत्रोऽपि निर्गतः । यथा स्त्यावत्यापुत्रस्य तथा निष्क्रमणम् । यावदनगारो जात ईर्या-समितो यावद् ब्रह्मचारी । ततो नु स सुनक्षत्रोऽनगारो यस्मिन्नेव दिवसे श्रमणस्य भगवतो महावीरस्यान्तिके मुण्डो भूत्वा प्रव्रजितस्तस्मिन्नेव दिवसेऽभिग्रहम् । तथैव यावद् विलमिव आहारयति । वहिर्जनपद-विहारं विहरति । एकादशाङ्गान्यधीते, संयमेन तपसात्मानं भावयन् विहरति । ततो नु स सुनक्षत्र औदारेण यथा स्कन्दकः ।

पदार्थान्वयः—जति–यदि णं–पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिए है भंते !–हे भगवन् ! उक्खेवओ–आक्षेप से जान लेना चाहिए अर्थात् प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है तो द्वितीय आदि का क्या अर्थ प्रतिपादन किया है इत्यादि पूर्व सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए । एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से जंबू–हे जम्बू ! तेणं कालेणं–उस काल और तेणं समएणं–उस समय काकंदीए–काकन्दी णगरीए–नगरी में भद्दा–भद्रा णामं–नाम वाली सत्थवाही–सार्थवाहिनी परिवसति–रहती थी जो अड्ढा०–सर्वसम्पन्ना थी । णं–पूर्ववत् तीसे–उस भद्दाए–भद्रा सत्थवाहीए–सार्थवाहिनी का पुत्ते–पुत्र सुणक्खत्ते–सुनक्षत्र णामं–नाम वाला दारए–बालक होत्था–हुआ जो अहीण०–पांचों इन्द्रियों से परिपूर्ण था और जाव–यावत् सुरूवे–सुरूप था पंचधातिपरिक्खित्ते–वह पांच धायों के लालन-पालन में था जहा–जैसे धण्णे–धन्यकुमार के हुए थे इसी प्रकार बत्तीसाओ–बत्तीस दाओ–कन्याओं से विवाह हुए और उनके पितृ-गृह से बत्तीस दहेज आये । जाव–यावत् उप्पिं–ऊपर पासायवडेंसए सर्व-श्रेष्ठ प्रासाद में सुखों का अनुभव करता हुआ विहरति–विचरता था । तेणं कालेणं २–उस काल और उस समय में समोसरणं–श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उस नगरी के बाहर सहस्रावन उद्यान में विराजमान हुए । जहा–जिस प्रकार धण्णो–धन्य कुमार निकला था तहा–उसी प्रकार

सुणक्खत्तेऽपि–सुनक्षत्र कुमार भी णिग्गते–श्री भगवान् के मुखारविन्द से धर्म-कथा सुनने के लिये निकला और धर्म-कथा सुनने के अनन्तर जहा–जिस प्रकार थावच्चा-पुत्तस्स–स्थावत्या पुत्र का हुआ था तहा–उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार का भी-निक्खमणं–निष्क्रमण (दीक्षामहोत्सव) हुआ जाव–यावत् वह भी सांसारिक सब सुख और सम्पत्ति को छोड़कर अणगारे–अनगार अर्थात् साधु जाते–हो गया और ईरियासमिते–ईर्या-समिति वाला जाव–यावत् अन्य साधु के गुणों से युक्त हो कर बंभयारी–ब्रह्मचारी हो गया । तते–इसके अनन्तर णं–पूर्ववत् वाक्यालङ्कार के लिये है से–वह सुणक्खत्ते–सुनक्षत्र अणगारे–अनगार जं चेव दिवसं–जिसी दिन समणस्स–श्रमण भगवतो म०–भगवान् महावीर के अंतिए–समीप मुंडे–मुण्डित हुआ जाव–यावत् तं चेव दिवसं–उसी दिन अभिग्गहं–अभिग्रह धारण कर लिया तहेव–उसी प्रकार जाव–यावत् जो कुछ भी भिक्षा से प्राप्त करता था उसको बिलमिव–सर्प जिस प्रकार बिना प्रयास के बिल में घुस जाता है उसी प्रकार वह भी आहारेति–बिना किसी लालसा और स्वाद के भोजन करता था और संजमेणं जाव–संयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विहरति–विचरण करता था। इसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी बहिया–बाहर जणवयविहारं–जनपद-विहार के लिए विहरति–गये और इस बीच में सुनक्षत्र अनगार ने एक्कारस–एकादश अंगाइ–अङ्गों का अहिज्जति–अध्ययन किया फिर संजमेणं–संयम और तवसा–तप से अप्पाणं–अपनी आत्मा की भावेमाणे–भावना करते हुए विहरति–विचरण करने लगा । तते णं–इसके अनन्तर से–वह सुणक्खत्ते–सुनक्षत्र अनगार ओरालेणं–उदार तप से जहा–जैसा खंदतो०–स्कन्दक था वैसा ही हो गया ।

मूलार्थ—हे भगवन् ! इत्यादि प्रश्न का पहले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए । (उत्तर में सुधर्मा स्वामी कहते हैं) हे जम्बू ! उस काल और उस समय में काकन्दी नाम की नगरी थी । उसमें भद्रा नाम की एक सार्थवाहिनी निवास करती थी । वह धन-धान्य-सम्पन्ना थी । उस भद्रा सार्थवाहिनी का पुत्र सुनक्षत्र नाम वाला था । वह सर्वाङ्ग-सम्पन्न और सुरूप था । पांच धाइयां उसके लालन पालन के लिये नियत थीं । जिस प्रकार धन्य कुमार के लिए बत्तीस दहेज आये उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार के लिये भी आये और वह सर्व-श्रेष्ठ भवनों में सुख का अनुभव करता हुआ विचरण करने लगा । उसी समय श्री भगवान् महावीर

स्वामी काकन्दी नगरी के बाहर विराजमान हो गये। जिस प्रकार धन्य कुमार उनके मुखारविन्द से धर्म-कथा सुनने के लिए गया था उसी प्रकार सुनक्षत्र कुमार भी गया और जिस प्रकार स्त्यावत्यापुत्र दीक्षित हुआ था उसी प्रकार वह भी हो गया। अनगार होकर वह ईर्या-समिति वाला और साधु के सब गुणों से युक्त पूर्ण ब्रह्मचारी हो गया। इसके अनन्तर वह सुनक्षत्र अनगार जिसी दिन मुण्डित हो प्रव्रजित हुआ उसी दिन से उसने अभिग्रह धारण कर लिया। फिर जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करता है उसी प्रकार वह भोजन करने लगा। संयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा। इसी बीच श्री भगवान् महावीर स्वामी जनपद-विहार के लिये बाहर गये और सुनक्षत्र अनगार ने एकादशाङ्ग शास्त्र का अध्ययन किया। वह संयम और तप से अपनी आत्मा की भावना करते हुए विचरण करने लगा। तदनु अत्यन्त कठोर तप के कारण जिस प्रकार स्कन्दक कृश हो गया था उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार भी हो गया।

टीका—इस सूत्र में सुनक्षत्र अनगार का वर्णन किया गया है। सूत्र का अर्थ मूलार्थ में ही स्पष्ट कर दिया गया है। उदाहरण के लिये सूत्रकार ने स्त्यावत्यापुत्र और धन्य अनगार को लिया है। पाठकों को स्त्यावत्यापुत्र के विषय में जानने के लिये 'ज्ञाताधर्म-कथाङ्गसूत्र' के पांचवें अध्ययन का विधि-पूर्वक अध्ययन करना चाहिए और धन्य अनगार का वर्णन इसी वर्ग के प्रथम अध्ययन में आ चुका है।

इस सूत्र में प्रारम्भ में ही "उक्खेवओ—उत्क्षेपः" एक पद आया है। उसका तात्पर्य यह है कि इसके साथ के पाठ का पिछले सूत्रों से आक्षेप कर लेना चाहिए अर्थात् उसके स्थान पर निम्न-लिखित पाठ पढ़ना चाहिए:—

"जति णं भंते! समणेणं भगवया महावीरेणं जाव संपत्तेणं नवमस्स अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते नवमस्स णं भंते! अंगस्स अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स वितियस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते? (यदि नु भदन्त! श्रमणेन भगवता महावीरेण यावत्संप्राप्तेन नवमस्याङ्गस्यानुत्तरोपपातिकदशानां तृतीयस्य वर्गस्य प्रथमस्याध्ययनस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः,

नवमस्य नु भदन्त ! अङ्गस्यानुत्तरोपपातिकदशानां तृतीयस्य वर्गस्य द्वितीयस्याध्ययनस्य कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?)

यह पाठ प्रायः प्रत्येक अध्ययन के प्रारम्भ में आता है। अतः उसको संक्षिप्त करने के लिये यहां 'उत्क्षेपः' पद दे दिया गया है । दूसरे सूत्रों में भी इसी शैली का अनुसरण किया गया है ।

जिस प्रकार श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षित होकर धन्य अनगार ने पारण के दिन ही आचाम्ल व्रत धारण किया था इसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार ने भी किया । जिस प्रकार 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' के द्वितीय शतक में स्कन्दक सन्यासी ने श्री श्रमण भगवान् के पास ही दीक्षित हो कर तप द्वारा अपना शरीर कृश किया था ठीक उसी प्रकार सुनक्षत्र अनगार का शरीर भी तप से कृश हो गया।

इस सूत्र से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जब कोई अपना लक्ष्य स्थिर कर ले तो उसकी प्राप्ति के लिये उसको सदैव प्रयत्न-शील रहना चाहिये और दृढ संकल्प कर लेना चाहिए कि वह उस पद की प्राप्ति करने में बड़े से बड़े कष्ट को भी तुच्छ समझेगा और अपने प्रयत्न में कोई भी शिथिलता नहीं आने देगा । जब तक वह इतना दृढ संकल्प नहीं करता तब तक वह उस तक नहीं पहुंच सकता । किन्तु जो अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये एकाग्र-चित्त से प्रयत्न करता है वह अवश्य और शीघ्र ही वहां तक पहुंच जाता है, इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं । ध्यान रहे कि इसके लिये गम्भीरता की अत्यन्त आवश्यकता है ।

अब सूत्रकार इसीसे सम्बन्ध रखते हुए कहते हैं:—

तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णगरे, गुणसिलए चेतिए, सेणिए राया । सामी समोसढे परिसा णिग्गता, राया णिग्गतो । धम्म-कहा, राया पडिगओ, परिसा पडिगता । तते णं तस्स सुणक्खत्तस्स अन्नया कयाति पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजा० जहा खंदयस्स बहू वासा परियातो, गोतमपुच्छा, तहेव कहेति जाव

सव्वट्ठसिद्धे विमाणे देवे उववण्णे । तेतीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । से णं भंते ! महाविदेहे सिज्झिहिति । एवं सुणक्खत-गमेणं सेसावि अट्ठ भाणियव्वा, णवरं आणुपुव्वीए दोन्नि रायगिहे, दोन्नि साएए, दोन्नि वाणिय-ग्गामे, नवमो हत्थिणपुरे, दसमो रायगिहे । नवण्हं भद्दाओ जणणीओ नवण्हवि बत्तीसाओ दाओ। नवण्हं निक्खमणं थावच्चापुत्तस्स सरिसं, वेहल्लस्स पिया करेति । छम्मासा वेहल्लते, नव धण्णे, सेसाणं बहू वासा, मासं संलेहणा, सव्वट्ठसिद्धे महाविदेहे सिज्झणा ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम्, गुणशिलकं चैत्यम्, श्रेणिको राजा । स्वामी समवसृतः परिषन्निर्गता, राजा निर्गतः । धर्म्म-कथा, राजा प्रतिगतः, परिषत्प्रतिगता । ततो नु तस्य सुनक्षत्रस्यान्यदा कदाचित् पूर्वरात्रावरात्रकाल-समये धर्म-जागरिका ....। यथा स्कन्दकस्य बहूनि वर्षाणि पर्यायः । गोतम-पृच्छा । तथैव कथयति यावत्सर्वार्थसिद्धे विमाने देव उत्पन्नः । त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा स्थितिः । स नु भदन्त ! महाविदेहे सेत्स्यति । एवं सुनक्षत्र-गमेन शेषा अप्यष्ट भणितव्याः, नवर-मानुपूर्व्या द्वौ राजगृहे नगरे, द्वौ साकेते, द्वौ वाणिजग्रामे, नवमो हस्तिनापुरे, दशमश्च राजगृहे । नवानां जनन्यो भद्रा नवानामपि द्वात्रिंशद् दातानि; नवानां निष्क्रमणं स्त्यावत्यापुत्रस्य सदृशम् । वेहल्लस्य पिता करोति । षण्मासा वेहल्लकः, नव धन्यः, शेषाणां

बहूनि वर्षाणि। मासं संलेखना, सर्वार्थसिद्धे, महाविदेहे सिद्धता।

पदार्थान्वयः—तेणं कालेणं—उस काल और तेणं समएणं—उस समय रायगिहे—राजगृह णगरे—नगर में सेणिए—श्रेणिक नाम वाला राया—राजा राज्य करता था उस के बाहर गुणसिलए—गुणशिलक चेतिए—चैत्य था सामी—श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उस चैत्य में समोसढे—विराजमान हो गये। तब परिसा—नगर की जनता णिग्गता—उनके मुख से धर्म-कथा सुनने के लिये निकली राया—राजा श्रेणिक भी णिग्गतो—निकला धम्मकहा—धर्म-कथा हुई और राया—राजा पडिगओ—चला गया परिसा—परिषद् पडिगता—चली गई। तते—इसके अनन्तर णं—वाक्यालंकार के लिये है तस्स—उस सुणक्खत्तस्स—सुनक्षत्र अनगार अन्नया—अन्यदा कयाति—किसी समय पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि—मध्यरात्रि के समय में धम्मजा०धर्म-जागरण करते हुए जहा—जैसा खंदयस्स—स्कन्दक के विषय में कहा गया उसी प्रकार बहू—बहुत से वासा—वर्षों तक परियातो—पर्याय पालन कर काल-गत हो गया। तब गोतमपुच्छा—गोतम स्वामी ने प्रश्न किया तहेव—श्री भगवान् ने उसी प्रकार कहेति—प्रतिपादन किया कि जाव—यावत् सव्वट्ठसिद्धे—सर्वार्थसिद्ध विमाणे—विमान में देवे—देव-रूप से उववण्णे—उत्पन्न हुआ है तेत्तीसं—तेतीस सागरोवमाइं—सागरोपम की ठिती—स्थिति पण्णत्ता—प्रतिपादन की गई है। भंते—हे भगवन्! से—वह वहां से च्युत होकर कहां उत्पन्न होगा? हे गौतम! महाविदेहे—महाविदेह क्षेत्र में सिज्झिहिति—सिद्ध होगा। एवं—इसी प्रकार सुणक्खत्तगमेणं—सुनक्षत्र के (आलापक) आख्यान के समान सेसा—शेष अट्ठ—आठ के विषय में अवि—भी भाणियव्वा—कहना चाहिए। णवरं—विशेषता इतनी है कि आणुपुव्वीए—अनुक्रम से दोन्नि—दो रायगिहे—राजगृह नगर में दोन्नि—दो साएए—साकेतपुर में दोन्नि—दो वाणियग्गामे—वाणिजग्राम में नवमो—नौवां हत्थिणपुरे—हस्तिनापुर में और दसमो—दशवां रायगिहे—राजगृह नगर में उत्पन्न हुए नवण्हं—नौ की भद्दाओ—भद्रा नाम वाली जणणीओ—माताएं थीं नवण्हवि—नौ की बत्तीसाओ—बत्तीस दाओ—दहेज आये नवण्हं—नौ का निक्खमणं—निष्क्रमण थावच्चापुत्तस्स—स्त्यावत्यापुत्र के सरिसं—सदृश हुआ किन्तु वेहल्लस्स—वेहल्ल कुमार का निष्क्रमण पिया—पिता ने करेति—किया। फिर छम्मासा—छः मास की दीक्षा वेहल्लते—वेहल्ल अनगार ने पालन की और धण्णे—धन्य अनगार

ने नव–नौ महीने की दीक्षा पालन की सेसाणं–शेष आठों की दीक्षा बहू वासा–बहुत वर्षों की थी। मासं–एक मास की संलेहणा–संलेखना सब ने की सव्वट्ठसिद्धे–सर्वार्थसिद्ध विमान में सब उत्पन्न हुए महाविदेहे–महाविदेह क्षेत्र में सिज्झणा–सब सिद्ध गति प्राप्त करेंगे।

मूलार्थ—उस काल और उस समय राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। नगर के बाहर गुणशैलक नाम चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी विराजमान होगये। परिषद् धर्म-कथा सुनने को आई और राजा भी आया। धर्म-कथा सुनकर परिषद् और राजा चले गये। तदनु मध्यरात्रि के समय धर्म-जागरण करते हुए सुनक्षत्र अनगार को स्कन्दक के समान भाव उत्पन्न हुए। वह बहुत वर्ष की दीक्षा पालन कर सर्वार्थसिद्ध विमान में देव-रूप से उत्पन्न हो गया। उसकी वहां पर तेतीस सागरोपम की आयु है। वहां से च्युत होकर वह महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा। इसी प्रकार शेष आठ अध्ययनों के विषय में भी जानना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि अनुक्रम से दो राजगृह नगर में, दो साकेतपुर में, दो वाणिज-ग्राम में, नौवाँ हस्तिनापुर में और दशवां राजगृह नगर में उत्पन्न हुए। इनमें नौ की माताएं भद्रा नाम वाली थीं और नौ को बत्तीस २ दहेज मिले। नौ का निष्क्रमण स्त्यावत्यापुत्र के समान हुआ। केवल वेहल्लकुमार का निष्क्रमण उसके पिता के द्वारा हुआ। छः मास का दीक्षा-पर्याय वेहल्ल अनगार ने पालन किया, नौ मास का धन्य ने। शेष आठों ने बहुत वर्ष तक दीक्षा-पर्याय पालन किया। दशों ने एक २ मास की संलेखना धारण की। सब के सब सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न हुए और वहां से च्युत होकर सब महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध-गति प्राप्त करेंगे।

टीका—इस सूत्र का विषय मूलार्थ और पदार्थान्वय में ही स्पष्ट है। अतः उसको यहां पर दोहराना ठीक प्रतीत नहीं होता।

कहना केवल इतना है कि यहां बार-बार स्कन्दक को ही उदाहरण-रूप में रखा गया है, उसका ज्ञान हमें कहां से हो। इसी प्रकार स्त्यावत्यापुत्र के विषय में भी कहना आवश्यक जान पड़ता है। इनमें से पहले अर्थात् स्कन्दक स्वामी का वर्णन पञ्चम अङ्ग के द्वितीय शतक में आचुका है और दूसरे अर्थात् स्त्यावत्यापुत्र

का वर्णन छठे अङ्ग के पञ्चम अध्ययन में है । यह 'अनुत्तरोपपातिकसूत्र' नौवां अङ्ग है । अतः सूत्रकार ने उसी वर्णन को यहां पर दोहराना उचित न समझ कर केवल दोनों का उदाहरण देकर बात समाप्त कर दी है । पाठकों को इनके विषय में पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये उक्त सूत्रों का अवश्य अध्ययन करना चाहिए । तब भी पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखते हुए हम इतना बता देना आवश्यक समझते हैं कि उक्त कुमारों के जीवन में श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म-कथा सुनने को जाना, वहां वैराग्य की उत्पत्ति, दीक्षा-महोत्सव, परम उच्चकोटि का तपःकर्म, शरीर का कृश होना, उसी के कारण अर्ध रात्रि में धर्म-जागरण करते हुए अनशन व्रत के भावों का उत्पन्न होना, अनशन कर सर्वार्थ-सिद्ध विमान में उत्पन्न होना, जिससे महाविदेहादि क्षेत्रों में उत्पन्न होकर सिद्ध-गति प्राप्त कर सकें आदि ही मोटी बातें हैं, जिनके आधार से उक्त सूत्रों के स्वाध्याय में सहायता मिल सकती है, क्योंकि यही विषय हैं जिनके लिए स्कन्दक और स्थावत्यापुत्र को उदाहरण में रखा है ।

इस सूत्र में 'पूर्वरात्रापरात्रकाल' शब्द आया है जिसका अर्थ मध्य-रात्रि है । यही समय एक ऐसा है जब सारा संसार प्रायः सुनसान रहता है । अतः धर्म-जागरण करने वालों का चित्त इस समय एकाग्र हो जाता है और उसमें पूर्ण स्थिरता विद्यमान होती है । ऐसे ही समय में विचार-धारा बहुत स्वच्छ रहती है और मस्तिष्क में बहुत ऊंचे विचार उत्पन्न होते हैं । यही कारण है कि धन्य आदि अनगारों के उस समय के विचार उनको सन्मार्ग की ओर ले गये ।

सूत्र में द्विवचन के स्थान में 'दोन्नि' बहुवचन का प्रयोग हुआ है । इसका कारण यह है कि प्राकृत भाषा में द्विवचन होता ही नहीं ।

अब सूत्रकार प्रस्तुत सूत्र का उपसंहार करते हुए कहते हैं :—

एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवता महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयं-संबुद्धेणं लोग-नाहेणं लोग-प्पदीवेणं लोग-पज्जोयगरेणं अभय-दएणं सरण-दएणं चक्खु-दएणं मग्ग-दएणं धम्म-दएणं धम्म-देसएणं-धम्मवर-चाउरंत-

चक्क-वट्टिणा अप्पडिहय-वरनाण-दंसण-धरेणं जिणेणं जाणएणं बुद्धेणं बोहएणं मोक्केणं मोयएणं तिन्नेणं तारयेणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तयं सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपत्तेणं अणुत्तरोववाइयदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पन्नत्ते। (सूत्रं ६) अणुत्तरोववाइयदसातो समत्तातो ॥ अणुत्तरोववाइयदसा णामं सुत्तं नवममंगं समत्तं ॥ श्रीरस्तु ॥ ग्रं १९२ ।

एवं खलु जम्बु ! श्रमणेन भगवता महावीरेणादिकरेण तीर्थकरेण स्वयं सम्बुद्धेन लोक-नाथेन लोक-प्रदीपेन लोक-प्रद्योत-करेणाभय-देन शरण-देन चक्षुर्देन मार्ग-देन धर्म-देन धर्म-देशकेन धर्मवर-चतुरन्त-चक्रवर्तिनाप्रतिहत-वरज्ञान-दर्शन-धरेण जिनेन ज्ञापकेन बुद्धेन बोधकेन मुक्तेन मोचकेन तीर्णेन तारकेण शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावर्तनं सिद्ध-गति-नामधेयं स्थानं संप्राप्तेनानुत्तरोपपातिकदशानां तृतीयस्य वर्गस्यायमर्थः प्रज्ञप्तः। (सूत्रम् ६) अनुत्तरोपपातिकदशाः समाप्ताः ॥ अनुत्तरोपपातिकदशा नाम नवममङ्गं समाप्तम् ॥ श्रीरस्तु ॥

पदार्थान्वयः—एवं–इस प्रकार खलु–निश्चय से जंबू–हे जम्बू ! समणेणं–श्री श्रमण भगवता–भगवान् महावीरेणं–महावीर स्वामी ने जो आइगरेणं–धर्म के प्रवर्तक हैं तित्थगरेणं–चार तीर्थों को स्थापन करने वाले हैं सयं-संबुद्धेणं–अपने आप बोध प्राप्त करने वाले हैं लोगनाहेणं–तीनों लोकों के नाथ हैं लोकप्पदीवेणं–लोक में प्रदीप के समान प्रकाश करने वाले हैं लोगपज्जोयगरेण–लोकों को सूर्य के समान प्रदीप्त करने वाले हैं अभयदएणं–अभय प्रदान करने वाले हैं सरणदएणं–

शरण देने वाले हैं चक्खुदएणं—लोगों को ज्ञान-चक्षु देने वाले हैं धम्मदएणं—उनको श्रुत और चारित्र रूप धर्म देने वाले हैं मग्गदएणं—और अज्ञान रूपी अन्धकार से मुक्ति-मार्ग दिखाने वाले हैं धम्मदेसएणं—धर्मोपदेशक हैं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा—श्रेष्ठ धर्म के एकमात्र चक्रवर्ती हैं अप्पडिहय—अप्रतिहत वर—श्रेष्ठ नाण—ज्ञान दंसण—दर्शन धरेणं—धारण करने वाले हैं जिणेणं—राग और द्वेष को जीतने वाले हैं जाणएणं—छद्मस्थ ज्ञान-चतुष्टय को जानने वाले हैं बुद्धेणं—बुद्ध हैं अर्थात् जीव आदि पदार्थों को जानने वाले हैं बोहएणं—औरों को बोध कराते वाले हैं मोक्केणं—बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त हैं मोयएणं—अन्य जीवों को इस परिग्रह से मुक्त कराने वाले हैं तिन्नेणं—संसार-रूपी सागर को पार करने वाले हैं तारयेण—और उपदेश के द्वारा औरों को इससे पार कराने वाले हैं सिवं—सर्वथा कल्याण-रूप अयलं—नित्य स्थिर अरुयं—शारीरिक और मानसिक रोग और व्यथाओं से रहित अणंतं—अन्त-रहित अक्खयं—कभी भी नाश न होने वाले अव्वाबाहं—पीडा अर्थात् सब प्रकार के दुःखों से रहित अपुनरावत्तयं—सांसारिक जन्म-मरण के चक्र से रहित सिद्धिगति—सिद्ध-गति नामधेयं—नाम वाले ठाणं—स्थान को संपत्तेणं—प्राप्त हुए उन्होंने अणुत्तरोववाइयदसाणं—अनुत्तरोपपातिकदशा के तच्चस्स—तृतीय वग्गस्स—वर्ग का अयं—यह अट्ठे—अर्थ पण्णत्ते—प्रतिपादन किया है सुत्तं ६—छठा सूत्र समाप्त हुआ अणुत्तरोववाइयदसाओ—अनुत्तरोपपातिकदशा समत्ताओ—समाप्त हुई अणुत्तरोववाइयदसा णामं—अनुत्तरोपपातिकदशा नाम का सुत्तं—सूत्र रूप नवममंगं—नौवां अङ्ग समत्तं—समाप्त हुआ ।

मूलार्थ—हे जम्बू ! इस प्रकार धर्म-प्रवर्तक, चार तीर्थ स्थापन करने वाले, स्वयं बुद्ध, लोक-नाथ, लोकों को प्रकाशित और प्रदीप्त करने वाले, अभय प्रदान करने वाले, शरण देने वाले, ज्ञान-चक्षु प्रदान करने वाले, मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले, धर्म देने वाले, धर्मोपदेशक, धर्मवर-चतुरन्त-चक्रवर्ती, अनभिभूत श्रेष्ठ ज्ञान और दर्शन वाले, राग-द्वेष के जीतने वाले, ज्ञापक, बुद्ध, बोधक, मुक्त, मोचक, स्वयं संसार-सागर से तैरने वाले और दूसरों को तराने वाले, कल्याण-रूप, नित्य स्थिर, अन्त-रहित, विनाश-रहित, शारीरिक और मानसिक आधि-व्याधि-रहित, पुनः-पुनः सांसारिक जन्म-मरण से रहित सिद्ध-गति नामक स्थान को प्राप्त हुए श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अनुत्तरोपपातिकदशा के

तृतीय वर्ग का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । छठा सूत्र समाप्त हुआ । अनुत्तरोपपातिकदशा समाप्त हुई । अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र नामक नवमअङ्ग समाप्त हुआ ।

टीका—यह सूत्र उपसंहार-रूप है । इससे सब से पहले हमें यह शिक्षा मिलती है कि प्रत्येक शिष्य को पूर्ण-रूप से गुरु-भक्त होना चाहिए और गुरु-भक्ति करते हुए गुरु के सद्गुणों को अवश्य प्रकट करना चाहिए । जैसे इस सूत्र में श्री सुधर्मा स्वामी ने, उपसंहार करते हुए, श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सद्गुणों को जनता पर प्रकट किया है । वे अपने शिष्य जम्बू से कहते हैं कि हे जम्बू! इस सूत्र को उन भगवान् ने प्रतिपादन किया है जो आदिकर हैं अर्थात् (आदौ—प्राथम्येन श्रुतधर्माचारादि ग्रन्थात्मकं करोति तदर्थप्रणायकत्वे प्रणयतीत्येवंशीलस्तेनादिकरेण) श्रुत-धर्म-सम्बन्धी शास्त्रों के प्रणेता हैं, तीर्थङ्कर हैं अर्थात् (तरन्ति येन संसार-सागरमिति तीर्थम्—प्रवचनम्, तदव्यतिरेकादिह सङ्घः—तीर्थम्, तस्य करणशीलत्वात्तीर्थकरस्तेन) जिसके द्वारा लोग संसार रूपी सागर से पार हो जाते हैं उसको तीर्थ कहते हैं । तीर्थ सङ्घ-रूपी चार हैं । उनके करने वाले महापुरुष ने ही इस सूत्र के अर्थ का प्रकाश किया है । इसी क्रम से श्री सुधर्मा स्वामी श्री भगवान् के 'नमोत्थु णं' में प्रदर्शित सब गुणों का दिग्दर्शन यहां कराते हैं । जब कोई व्यक्ति सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है उस समय वह अनन्त और अनुपम गुणों का धारण करने वाला हो जाता है । उसके गुणों के अनुकरण करने वाला भी एक दिन उसी रूप में परिणत हो सकता है । अतः प्रत्येक व्यक्ति को उनका अनुकरण जहां तक हो अवश्य करना चाहिए । यही विशेषतः कारण है कि सुधर्मा स्वामी ने लोगों की हित-बुद्धि से उन गुणों का यहां दिग्दर्शन कराया है, जिससे लोग भगवान् के गुणों में अनुराग रखते हुए उनकी भक्ति में लीन हो जायं । भगवान् हमें संसार-सागर में अभय प्रदान करने वाले हैं और शरण देने वाले हैं अर्थात् (शरणम्—त्राणम्, अज्ञानोपहतानां तद्रक्षास्थानम्, तच परमार्थतो निर्वाणम्, तद्ददाति इति शरणदः) अज्ञान-विमूढ व्यक्तियों की एकमात्र रक्षा के स्थान निर्वाण को देने वाले हैं, जिसको प्राप्त कर आत्मा सिद्ध-पद में अपने प्रदेश में स्थित भी अन्य सिद्ध-प्रदेशों में अलक्षित-रूप से लीन हो जाता है । जिन भगवान् की भक्ति से

इतना सर्वोत्तम लाभ होता है । उनकी भक्ति कोई क्यों न करे अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति उनकी भक्ति में लीन होकर उस अलभ्य पद की प्राप्ति करनी चाहिए । भगवान् को अप्रतिहत-ज्ञान-दर्शन-धर बताया गया है उसका अभिप्राय यह है । (अप्रतिहते—कटकुड्यपर्वतादिभिरस्खलितेऽविसंवादके वाक्षायिकत्वाद्, वरे—प्रधाने ज्ञान-दर्शने केवललक्षणे धारयतीति—अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरस्तेन) अर्थात् किसी प्रकार से भी स्खलित न होने वाले सर्वोत्तम सम्यग् ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान और केवल दर्शन धारण करने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान् की जब शुद्ध चित्त से भक्ति की जायगी तो आत्मा अवश्य ही निर्वाण-पद प्राप्त कर तन्मय हो जायगा । ध्यान रहे कि इस पद की प्राप्ति के लिये सम्यग् ज्ञान-दर्शन और सम्यक् चारित्र के सेवन की अत्यन्त आवश्यकता है । जब हम किसी व्यक्ति की भक्ति करते हैं तो हमारा ध्येय सदैव उसी के समान बनने का होना चाहिए । तभी हम उसमें सफल हो सकते हैं । पहले हम कह चुके हैं कि कर्म ही सांसारिक बन्ध और मोक्ष के कारण हैं । उनका क्षय करना मुमुक्षु का पहला ध्येय होना चाहिए । जब तक एक भी कर्म अवशिष्ट रहता है तब तक कोई भी निर्वाण-रूप अलौकिक पद की प्राप्ति नहीं कर सकता है । उनका क्षय या तो उपभोग से होता है या ज्ञानाग्नि के द्वारा । यदि भोग के ऊपर ही उनको छोड़ दिया जाय तो उनका नाश कभी नहीं हो सकता। क्योंकि उनके उपभोग के साथ २ नये कर्म सञ्चित होते जाते हैं, जो उसको फिर उसी बन्धन में डाल देते हैं । अतः ज्ञानाग्नि से शीघ्र उनका क्षय करना चाहिए । वह ज्ञान साधु आचरण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । इसी लिये कहा भी है 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' अर्थात् ज्ञान और क्रिया के सहयोग से ही मोक्ष होता है । सिद्ध यह हुआ कि भगवद्-भक्ति के साथ २ सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आसेवन भी आवश्यक है ।

इस प्रकार ज्ञान और चारित्र की सहायता से धन्य अनगार आदि और उनके समान अन्य महापुरुष अनुत्तर विमानों में देव-रूप से उत्पन्न होते हैं और जो इन विमानों में उत्पन्न होते हैं वे अवश्य ही मोक्ष-गामी होते हैं । अत एव प्रस्तुत सूत्र में उन्हीं व्यक्तियों का वर्णन किया गया है, जो उक्त विमानों में जाकर उत्पन्न हुए हैं ।

हमने जिस प्रति से यह हिन्दी अनुवाद किया है, वह 'आगमोदय-समिति' की ओर से प्रकाशित हुई है । कुछ एक हस्त-लिखित प्रतियों में पाठभेद भी मिलते हैं । हमने जिस प्रति का अनुसरण किया है, उसमें पाठ संक्षिप्त कर दिया गया है । क्योंकि उक्त समिति ने पहले अङ्गों अर्थात् 'भगवतीसूत्र' और 'ज्ञाताधर्म-कथाङ्ग सूत्र' का पाठ यहां दोहराना उचित नहीं समझा, नाहीं हमें ठीक प्रतीत हुआ । अतः उदाहरण-स्वरूप स्त्यावत्यापुत्र आदि के नाम का उल्लेख ही स्थान-स्थान पर कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त भी पाठ-भेद हमें हस्त-लिखित प्रतियों में मिलते हैं, जैसे इस सूत्र की समाप्ति पर ही कुछ प्रतियों में निम्न-लिखित पाठ है—

"अणुत्तरोववाइयदसाणं एगोसुयक्खंधो तिण्णि वग्गा तिसु चेव दिवसेसु उद्दि सिज्झंति । तत्थ पढमे वग्गे दस उद्देसगा, बीए वग्गे तेरस उद्देसगा, ततीयवग्गे दस उद्देसगा । सेसं जहा नायाधम्मकहा तहा णेयव्वा । अणुत्तरोववाइयदसाणं नवमं अंगं समत्तं ॥"

इस पाठ में प्रस्तुत सूत्र की संख्या का विषय वर्णन किया है । पाठ बिलकुल स्पष्ट है । इस पाठ को संग्रह पाठ भी कहा जाता है ।

इस सूत्र से अन्तिम शिक्षा हमें यह भी मिलती है कि उक्त महर्षियों ने महाघोर तप करते हुए भी एकादशाङ्ग सूत्रों का अध्ययन किया । अतः प्रत्येक व्यक्ति को योग्यतापूर्वक शास्त्राध्ययन में प्रयत्न-शील होना चाहिए, जिससे वह अनुक्रम से निर्वाण-पद की प्राप्ति कर सके ।

अन्त में हम अपने धर्म-प्रिय पाठकों से विदा लेते हुए अभयदेव सूरि के ही शब्दों को नीचे उद्धृत किये देते हैं :—

शब्दाः केचन नार्थतोऽत्र विदिताः केचित्तु पर्यायतः,
सूत्रार्थानुगतेः समुह्य भणतो यज्जातमागः-पदम् ।
'भाष्ये ह्यत्र' तकज्जिनेश्वरवचोभाषाविधौ कोविदैः,
संशोध्यं विहितादरैर्जिनमतोपेक्षा यतो न क्षमा ॥

श्रीरस्तु ।

अनुत्तरोपपातिकसूत्र की तपोगुण-प्रकाशिका
हिन्दी-भाषा-टीका समाप्त ।

इतना सर्वोत्तम लाभ होता है । उनकी भक्ति कोई क्यों न करे अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति उनकी भक्ति में लीन होकर उस अलभ्य पद की प्राप्ति करनी चाहिए । भगवान् को अप्रतिहत-ज्ञान-दर्शन-धर बताया गया है उसका अभिप्राय यह है । (अप्रतिहते--कटकुट्यपर्वतादिभिरस्खलितेऽविसंवादके वाक्षायिकत्वाद्, वरे--प्रधाने ज्ञान-दर्शने केवललक्षणे धारयतीति--अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरस्तेन) अर्थात् किसी प्रकार से भी स्खलित न होने वाले सर्वोत्तम सम्यग् ज्ञान अर्थात् केवल ज्ञान और केवल दर्शन धारण करने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी भगवान् की जब शुद्ध चित्त से भक्ति की जायगी तो आत्मा अवश्य ही निर्वाण-पद प्राप्त कर तन्मय हो जायगा । ध्यान रहे कि इस पद की प्राप्ति के लिये सम्यग् ज्ञान-दर्शन और सम्यक् चारित्र के सेवन की अत्यन्त आवश्यकता है । जब हम किसी व्यक्ति की भक्ति करते हैं तो हमारा ध्येय सदैव उसी के समान बनने का होना चाहिए । तभी हम उसमें सफल हो सकते हैं । पहले हम कह चुके हैं कि कर्म ही सांसारिक बन्ध और मोक्ष के कारण हैं । उनका क्षय करना मुमुक्षु का पहला ध्येय होना चाहिए । जब तक एक भी कर्म अवशिष्ट रहता है तब तक कोई भी निर्वाण-रूप अलौकिक पद की प्राप्ति नहीं कर सकता है । उनका क्षय या तो उपभोग से होता है या ज्ञानाग्नि के द्वारा । यदि भोग के ऊपर ही उनको छोड़ दिया जाय तो उनका नाश कभी नहीं हो सकता। क्योंकि उनके उपभोग के साथ २ नये कर्म सञ्चित होते जाते हैं, जो उसको फिर उसी बन्धन में डाल देते हैं । अतः ज्ञानाग्नि से शीघ्र उनका क्षय करना चाहिए । वह ज्ञान साधु आचरण के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । इसी लिये कहा भी है 'ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षः' अर्थात् ज्ञान और क्रिया के सहयोग से ही मोक्ष होता है । सिद्ध यह हुआ कि भगवद्-भक्ति के साथ २ सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आसेवन भी आवश्यक है ।

इस प्रकार ज्ञान और चारित्र की सहायता से धन्य अनगार आदि और उनके समान अन्य महापुरुष अनुत्तर विमानों में देव-रूप से उत्पन्न होते हैं और जो इन विमानों में उत्पन्न होते हैं वे अवश्य ही मोक्ष-गामी होते हैं । अत एव प्रस्तुत सूत्र में उन्हीं व्यक्तियों का वर्णन किया गया है, जो उक्त विमानों में जाकर उत्पन्न हुए हैं ।

हमने जिस प्रति से यह हिन्दी अनुवाद किया है, वह 'आगमोदय-समिति' की ओर से प्रकाशित हुई है । कुछ एक हस्त-लिखित प्रतियों में पाठभेद भी मिलते हैं । हमने जिस प्रति का अनुसरण किया है, उसमें पाठ संक्षिप्त कर दिया गया है । क्योंकि उक्त समिति ने पहले अङ्गों अर्थात् 'भगवतीसूत्र' और 'ज्ञाताधर्म-कथाङ्ग सूत्र' का पाठ यहां दोहराना उचित नहीं समझा, नाहीं हमें ठीक प्रतीत हुआ । अतः उदाहरण-स्वरूप स्त्यावत्यापुत्र आदि के नाम का उल्लेख ही स्थान-स्थान पर कर दिया गया है । इसके अतिरिक्त भी पाठ-भेद हमें हस्त-लिखित प्रतियों में मिलते हैं, जैसे इस सूत्र की समाप्ति पर ही कुछ प्रतियों में निम्न-लिखित पाठ है—

"अणुत्तरोववाइयदसाणं एगोसुयक्खंधो तिण्णि वग्गा तिसु चेव दिवसेसु उद्दि सिज्झंति । तत्थ पढमे वग्गे दस उद्देसगा, बीए वग्गे तेरस उद्देसगा, ततीयवग्गे दस उद्देसगा । सेसं जहा नायाधम्मकहा तहा णेयव्वा । अणुत्तरोववाइयदसाणं नवमं अंगं समत्तं ॥"

इस पाठ में प्रस्तुत सूत्र की संख्या का विषय वर्णन किया है । पाठ बिलकुल स्पष्ट है । इस पाठ को संग्रह पाठ भी कहा जाता है ।

इस सूत्र से अन्तिम शिक्षा हमें यह भी मिलती है कि उक्त महर्षियों ने महाघोर तप करते हुए भी एकादशाङ्ग सूत्रों का अध्ययन किया । अतः प्रत्येक व्यक्ति को योग्यतापूर्वक शास्त्राध्ययन में प्रयत्न-शील होना चाहिए, जिससे वह अनुक्रम से निर्वाण-पद की प्राप्ति कर सके ।

अन्त में हम अपने धर्म-प्रिय पाठकों से विदा लेते हुए अभयदेव सूरि के ही शब्दों को नीचे उद्धृत किये देते हैं :—

शब्दाः केचन नार्थतोऽत्र विदिताः केचित्तु पर्यायतः,
सूत्रार्थानुगतेः समुह्य भणतो यज्जातमागः-पदम् ।
'भाष्ये ह्यत्र' तकजिनेश्वरवचोभाषाविधौ कोविदैः,
संशोध्यं विहितादरैर्जिनमतोपेक्षा यतो न क्षमा ॥

श्रीरस्तु ।

अनुत्तरोपपातिकसूत्र की तपोगुण-प्रकाशिका
हिन्दी-भाषा-टीका समाप्त ।

नमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

अनुत्तरोपपातिकदशासूत्रम्

शब्दार्थ-कोष

अ=और ३२

अंगस्स=अङ्ग का ३^{२}, ८^{२}

अंगाइं=अङ्गों का १६, ४९, ८६

अंतं=अन्त, देहावसान, मृत्यु २७

अंतिए, ते=समीप, पास, नज़दीक ३९, ४९, ७२, ७३, ८६

अंतेवासी=शिष्य १३^{२}

अंब-गट्ठिया=आम की गुठली ६१

अंब-पेसियां=आम की फाँक ६३

अंबाडग-पेसिया=आम्रातक-अम्बाड़े की फाँक ६३

अकलुसे=क्रोध आदि कलुषों से रहित ४६

अक्खयं=कभी नाश न होने वाला ९५

अक्खसुत्त-माला=रुद्राक्ष की माला ६७

अगत्थिय-संगलिया=अगस्तिक वृक्ष की फली ५९

अग्ग-हत्थेहिं=हाथ के पञ्जों से ६७

अच्छीए=आँखों का ६४

अज्ज=आर्य ३

अज्झयणस्स=अध्ययन का ११, ३४, ८१

अज्झयणा=अध्ययन ८^{२}, ११, २४, २६, ३२, ३४

अज्झयणे=अध्ययन २४

अट्ठ=आठ ९१

अट्ठट्ठओ=आठ-आठ १२

अट्ठएहं=आठ के (विषय में) २०

अट्ठमस्स=आठवें का ३

अट्ठि-चम्म-छिरत्ताए=हड्डी, चमड़ा और नसों से ५१, ६४

अट्ठी=अस्थि, हड्डी ६४

अट्ठे=अर्थ ३^{२}, ११, २०, २४^{२}, २७^{२}, ३२^{२}, ३४, ७३, ८१, ९५

अडमाणे=घूमता हुआ (भिक्षा के लिए) ४५

अड्ढा=ऋद्धि अर्थात् ऐश्वर्य वाली ३५, ८६

अणंतं=अन्त-रहित, कभी नाश न होने वाला ९५

अणगारं=अनगार को ८, १३, ७३

अणगारस्स=अनगार—माया-ममता को छोड़कर घर का त्याग करने वाले साधु का ५१, ६४, ७२, ८०

अणगारे=अनगार ८, १३^{२}, ३९, ४२^{२}, ४५^{२}, ४६^{२}, ४९^{२}, ६७, ७२^{३}, ७३, ८६^{२}

अणज्झोववण्णे=राग-द्वेष से रहित, विषयों में अनासक्त ४६

आइल्लाणं=आदि के, पहले के २०[२]
आउक्खएणं=आयु के क्षय होने के कारण १३
आणुपुव्वीए=अनुक्रम से, नम्बर वार २०, २७, ६१
आपुच्छइ, ति=पूछता है, पूछती है ३६[२], ४५
आपुच्छणं=पूछना ८०
आपुच्छणा=धर्म-जिज्ञासा, धर्म के विषय में पूछना १६
आपुच्छति=देखो आपुच्छइ
आपुच्छामि=पूछता हूँ ३६
आयंबिलं='आयंबिल' नामक एक तप, जिसमें रूखा भात या अन्य कोई प्रासुक धान्य केवल एक ही बार खाया जाता है ४२, ४५
आयंबिल-परिग्गहिएणं=' आयंबिल ' नामक तप की रीति से ग्रहण किया हुआ ४२
आयवे=धूप में ५६
आयार-भंडए=तप-साधन के उपकरण १३, ८०
आयाहिणं=आदक्षिणा ७३
आयाहिणं-पयाहिणं=आदक्षिणा और प्रदक्षिणा ७३
आरणच्चुए=आरण-ग्यारहवाँ देवलोक और अच्युत-बारहवाँ देवलोक १३
आहरति=भोजन करता है ७२
आहारं=भोजन ४६
आहारेति=भोजन करता है, खाता है ४६, ८६,
आहिते=कहा गया है २४[२], ३२[२]
इ=इति, परिचय या समाप्ति-सूचक अव्यय ६४
इंगाल-संगडिया=कोयलों की गाड़ी ६७
इंदभूति-पामोक्खाणं=इन्द्रभूति आदि तपस्वियों में ७२[२]
इच्छामि=मैं चाहता हूँ ४२
इति=समाप्ति-बोधक अव्यय, परिचयात्मक अव्यय ५३[६], ५५[४]
इब्भवर-कन्नगाणं=श्रेष्ठ श्रेष्ठियों की कन्याओं का
इमंसि=इनमें ७२
इमासिं=इनमें ७२[३]
इमे=ये १३, ३२, ८०
इमेणं=इससे ८०
इमेयारूवे=इस प्रकार के ८०
इसिदासे=ऋषिदास कुमार ३२
ईर्या-समिते=ईर्या-समिति वाला, यत्नाचारपूर्वक चलने वाला ३६, ८६
उक्कमेणं=उत्क्रम से, उलटे क्रम से, नीचे से ऊपर २०
उक्खेवओ=आक्षेप, न कहे हुए वाक्यों का पीछे के वाक्यों से आक्षेप करना ८६
उग्गहं=अवग्रह, सम्मान, पूजा आदि ७२
उच्च०=(उच्च-मज्झम-नीच) उच्च, मध्यम और नीच कुलों से ४५
उच्चट्ठवणते=ऊँचे गले का पात्र विशेष ६१
उज्जाणातो=उद्यान से, बगीचे से ४६
उज्जाणे=उद्यान, बगीचा ३४, ७२
उज्झिय-धम्मियं=निरुपयोगी, फेंक देने योग्य ४२
उट्ट-पाद=ऊँट का पैर ५५
उट्ठाणं=ओंठों की ६१
उड्ढं=ऊँचे १३[४], ८०[४]
उण्हे=गरमी में ५१, ५३
उदरं=पेट ५५
उदर-भायणं=उदर-भाजन, पेटरूपी पात्र ६४
उदर-भायणेणं=उदर-भाजन में ६७
उदर-भायणस्स=उदर-भाजन की ५५

उप्पिं=ऊपर १२, ३८, ७२, ८६
उब्भड-घटामुहे=घड़े के मुख के समान विकराल मुख वाला ६७
उम्मुक-वालभावं=बालकपन से अतिक्रान्त, जिसने बचपन छोड़ दिया है ३७
उयरंति=उतरते हैं ८०
उर-कडग-देस-भाएणं=वक्षस्थल (छाती) रूपी चटाई के विभागों से ६७
उर-कडयस्स=छाती की ५६
उवसोभेमाणे=शोभायमान होता हुआ ६७
उवयालि=उपजालि कुमार ८
उववज्जिहिंति=उत्पन्न होगा ८०
उववएणे,न्ने=उत्पन्न हुआ १३[२], ८०[२], ९१
उववायो=उपपात, उत्पत्ति २०
उवसोभेमाणे=शोभायमान होता हुआ ७२
उवागच्छति=आता है ४५, ७३[२]
उवागते=आया ७२
उव्बुड-णयणकोसे=जिसकी आँखें भीतर धँस गई थीं ६७
ऊरुस्स=ऊरुओं का ५३
ऊरू=दोनों ऊरु ५३
एएसिं=इनके विषय में ६४
एकारस=ग्यारह १६, ४६, ८६
एग-दिवसेणं=एक ही दिन में ३८
एयं=इस ७३
एयारूवे=इस प्रकार का ५१[२], ५३[२], ५५,
एवं=इस प्रकार ३, ८[३], १२[२], १३[२], २०, २४[२], ३४, ४२, ५३, ६४, ७२[४], ७३, ८०[२], ८६, ९१, ९४
एव=ही, निश्चयार्थ बोधक अव्यय ३६
एवामेव=इसी प्रकार ५१[२], ५३, ५५, ५६, ५६[३], ६१[४], ६३, ६४[३]
एसणाए=एषणा-समिति—उपयोगपूर्वक आहार आदि की गवेषणा करने से ४५
ओयरंति=उतरते हैं १३
ओरालेणं=उदार—प्रधान (तप से) ४६, ८०, ८६
कइ=कितने ८
कंक-जंघा=कङ्क नाम पक्षी विशेष की जङ्घा ५३
कंपण-वातिओ (विव)=कम्पन-वातिक रोग वाले व्यक्ति के समान ६७
कट्ठ-कोलंबए=लकड़ी का कोलम्ब—पात्र विशेष ५५
कट्ठ-पाउया=लकड़ी की खड़ाऊँ ५१
कडि-कडाहेणं=कटि (कमर) रूपी कटाह से ६७
कडि-पत्तस्स=कटि-पत्र की, कमर की ५५
कण्ण=कान ६४
कण्णाणं=कानों की ६४
कण्हो=कृष्ण वासुदेव ३६
कतरे=कौनसा ७२
कदाति=कभी ७२
कन्नावली=कान के भूषणों की पङ्क्ति ५५
कप्पति=उचित है, योग्य है ४२
कप्पे=कल्प-सौधर्म आदि देवों के नाम वाले द्वीप और समुद्र १३
कय-लक्खण=शुभ लक्षण वाला ७३
कयाइ,ति=कदाचित्, कभी ४६, ८०, ९०
करग-गीवा=करवे (मिट्टी के छोटे से पात्र) की ग्रीवा अर्थात् गला ६१
करेंति=करते हैं १३
करेति=करता है ३६, ४५, ७३[२], ९१
करेह=करो ४२
कल-संगलिया=कलाय-धान्य विशेष की फली ५१
कलातो=कलाएँ २७, ३५
कलाय-संगलिया=कलाय की फली ५६
कहिं=कहाँ १३[३], ८०[२]

चक्खु-दयणं=ज्ञान-चक्षु प्रदान करने वाले ६४
चम्म-छिरत्ताए=चमड़ा और शिराओं के कारण ६४
चरेमाणे=चलते हुए, विहार करते हुए ७२
चलंतेहिं=चलते हुए, हिलते हुए ६७
चिंतणा=धर्म-चिन्ता १६
चिंता=चिन्ता ८०
चिट्ठति=स्थित है, रहता है, रहती है ४६, ५१, ५३, ६४, ६७[२], ७२
चित्त-कट्टरे=गौ के चरने के कुण्ड के नीचे का हिस्सा ५६
चेतिए,ते=चैत्य, उद्यान, बागीचा १२, २७, ७१, ६०
चेल्लणाए=चेल्लणा देवी के २०
चेव (च+इव)=ठीक ही १६[२]; ४२[४], ५१, ६४, ७२[६], ७३, ८६[२]
चोद्दसण्हं=चौदह का ७२[२]
छट्ठं-छट्ठेणं=षष्ठ षष्ठ तप से, जिस तप में उपवास ६ भक्त या दो दिन के बाद खोला जाता है ४२, ४३
छट्ठस्सवि=छठे (भक्त) पर भी ४२
छत्त-चामराओ=छत्र और चामरों से ३६
छम्मासा=छः महीने ६१
छिन्ना=तोड़ी हुई ५१, ५६
जइ,ति=यदि ३, ८, ११, २४, २६, ३२, ३४, ४५, ८६
जं=जिस ४२[२], ८६
जंघाणं=जङ्घाओं का ५३
जंबुं=जम्बू स्वामी को ८
जंबू=जम्बू स्वामी, सुधर्मा स्वामी के मुख्य शिष्य ३, ८, १२, २४, ३२, ३४, ८०, ८६, ६४
जणणीओ=माताएँ ६१

जति=देखो जइ
जधा=जैसे १३
जमाली=जमालि कुमार ३६[२]
जम्मं=जन्म २७
जम्म-जीविय-फले=जन्म और जीवन का फल ७३
जयंते=जयन्त विमान में २०, २७
जयण-घडण-जोग-चरित्ते=जयन (प्राप्त योगों में उद्यम), घटन (अप्राप्त योगों की प्राप्ति का उद्यम) और योग (मन आदि इन्द्रियों का संयम) से युक्त चरित्र वाला ४६
जरग्ग-ओवाणहा=सूखी जूती ५१
जरग्ग-पाद=बूढे बैल का पैर (खुर) ५५
जहा=जैसा, जैसे १२[३], २०, २७[२], ३५, ३६[६], ४५, ४६, ४६, ६३, ६४[२], ६७, ८०[२], ८६[४], ६०
जहा-णामए,ते=यथा-नामक, जैसी, जैसा ५१[२], ५३[३], ५५[४], ५६[३], ६१[४], ६७
जा=जैसी १६
जाणएणं=(छद्मस्थ ज्ञान-चतुष्टय को) जानने वाले ६५
जाणूणं=जानुओं का ५३
जाणेत्ता=जानकर १३, ३७
१ जाते=बालक ३५
२ जाते=हो गया ३६, ८६
जामेव=जिसी ७३
जालिं=जालि अनगार को १३
जालि=जालि कुमार या अनगार ८, २७
जालिस्स=जालि की १३, २७
जालीकुमारो=जालिकुमार १२
जालीवि=जालिकुमार भी १२
जाव=यावत्, पहले कही हुई बात को

उसका आक्षेप सर्वत्र किया गया है ३^{2}, ८, ११^{2}, १२, १३^{2}, २०, २४, २६, २७, ३२, ३४, ३५^{3}, ३७^{2}, ३८^{3}, ३९^{3}, ४२, ४५^{3}, ४६^{2}, ४९, ५३, ५५, ६४, ६७, ७२^{5}, ८०^{3}, ८१, ८६^{7}, ९०
जावज्जीवाए=जीवन पर्यन्त ४२, ४३
जाहे=जब ३९
जिणेणं=राग-द्वेष को सर्वथा जीतने वाले 'जिन' भगवान् ने ९५
जियसत्तुं=जितशत्रु राजा को ३९
जियसत्तू=जितशत्रु नाम का राजा ३५, ३९^{2}
जिब्भाए=जिह्वा की, जीभ की ६१
जीवेण=जीव की शक्ति से ६७^{2}
जीहा=जिह्वा, जीभ ६४
जेणेव=जिसी ओर ४५, ७२^{2}, ७३^{2}
जोइज्जमाणेहिं=दिखाई देती हुई ६७
ठाणं=स्थान को ९५
ठिती=स्थिति १३^{2}, ८०, ९१
ढेणालिया-जंघा=ढेणिक पक्षी की जङ्घा ५३
ढेणालिया-पोरा=ढेणिक पक्षी के सन्धि-स्थान ५३
णं=वाक्यालङ्कार के लिए अव्यय है, जिसका इस ग्रन्थ में हमने 'तु' से संस्कृत अनुवाद किया है ३^{2}, ८^{3}, ११^{2}, १३, २४, २६, ३२^{2}, ३४, ३५, ३७, ३९, ४२^{6}, ४५^{2}, ४६^{2}, ४९^{2}, ५१^{2}, ६४, ६७^{2}, ७२^{2}, ७३^{5}, ८०^{3}, ८६^{5}, ९०^{2}
ण=नहीं, निषेधार्थक अव्यय ४२, ४५^{2}, ६४
णगरी=नगरी ३४, ४५
णगरीए=नगरी में ८६
णगरीतो=नगरी से ४६, ४९
णगरे=नगर १२, २७, ७१, ९०
णमंसति=नमस्कार करता है ४२, ७२, ७३^{3}
णवरं=विशेषता-बोधक अव्यय ६४
णाणत्तं=नानात्व, माता-पिता आदि का वर्णन २०
णाम=नाम वाली ३४
णामं=नाम वाला ३५, ८६^{2}
णिक्खंतो=गृहस्थ छोड़कर दीक्षित होगया १६
णिक्खमणं=निष्क्रमण, दीक्षित होना ३९, ८६
णिग्गओ=निकला १२^{2}
णिग्गता=निकली ९०
णिग्गते=निकला ८६
णिग्गतो=निकला ९०
णिग्गया=निकली ७१
णिम्मंस=मांस-रहित ६४
णिम्मंसा=मांस-रहित ५१
णो=नहीं, निषेधार्थक अव्यय ४२^{3}, ५१, ५३, ६४
तए=इसके अनन्तर ८०
तओ=तीन ८
तं=उस ४२^{5}, ८०, ८६
तंजहा=जैसे ८, २४, ३२, ३५
तच्चस्स=तीसरे ३२^{2}, ३४, ९५
तते=इसके अनन्तर ८, १३, ३९^{2}, ४२^{3}, ४५^{3}, ४६^{2}, ४९^{2}, ७२^{3}, ७३, ८६^{2}, ९०
ततो=इसके अनन्तर ८०
तत्थ=वहाँ ३५
तरुणए=कोमल ६४
तरुणग-एलालुए=कोमल आलू ६४
तरुणग-लाउए=कोमल तुम्बा ६४
तरुणिते=छोटी, कोमल ५३
तरुणिया=छोटी, कोमल ५१, ५९, ६३
तव=तेरा ७३
तव-तेय-सिरीए=तप और तेज की लक्ष्मी से ६७
तव-रूव-लावन्ने=तप के कारण उत्पन्न हुई सुन्दरता ५१

तवसा=तप से ४६, ४६, ८६
तवेणं=तप से ६७
तवो-कम्मं=तप-कर्म १६
तवो-कम्मेणं=तप-कर्म से ४२, ४३
तस्स=उसका ३६, ८०, ६०
तहा=उसी तरह १२, २७, ३६[३], ६७, ८६[३]
तहा-रूवाणं=तथा-रूप, शास्त्रों में वर्णन किये हुए गुणों से युक्त साधुओं का ४६
तहेव=उसी प्रकार १२, १३, २०, ४५, ७२, ८०[३], ८६, ६०
ताए=उस ४५
ताओ=उस १३
तामेव=उसी ७३
तारएणं=दूसरों को संसार-सागर से पार करने वाले ६५
तालियंट-पत्ते=ताड़ के पत्तों का पङ्खा ५६
ति=इति, समाप्ति या परिचय बोधक अव्यय ८, १३, ५१[५], ५३[३]
तिकट्टु=इस प्रकार करके ७३
तिक्खुत्तो=तीन बार ७३[३]
तिण्णि=तीन ८
तिण्हं=तीन का २०
तित्थगरेणं=चार तीर्थों की स्थापना करने वाले ६१
तिन्नेणं=संसार सागर से पार हुए ६५
तीसे=उस ३५, ८६
तुब्भेणं=आप से ४२
तुमं=तुम ७३
ते=वे १३; ३२
तेएणं=तेज से ६७
तेणं=उस ३[२], १२[२], २७[२], ३४[२], ३६[२], ४६, ७१[४], ७२[२], ८६[२], ६०
तेणट्ठेणं=इस कारण ७२
तेणेव=उसी ओर ४५, ७२, ७३[२]
तेत्तीसं=तेतीस ८०, ६१
तेरस=तेरह २६
तेरसण्हवि=तेरहों की २७
तेरसमे=तेरहवाँ २४
तेरसवि=तेरह ही २७
तेसिं=उनके ३७
तो=तो ४५[२]
त्ति=इति ८०
थावच्चापुत्तस्स=स्थावत्या-पुत्र की, स्थावत्या गाथापत्नी का पुत्र, जिसने एक सहस्र मनुष्यों के साथ दीक्षा ली थी ३६, ८६
थावच्चापुत्तो=स्थावत्या-पुत्र ३६
थासयावली=दर्पणों (आरसियों) की पंक्ति ५५
थेरा=स्थविर भगवान् १३, ८०
थेराणं=स्थविर भगवन्तों का ४६
थेरेहिं=स्थविरों के (से) १२, ८०
दस=दश ८, ११, ३२[२], ३४
दसमे=दशवाँ, दशम ३२
दसमो=दशम, दशवाँ ६१
दाओ=विवाह में कन्या-पक्ष से आने वाला दहेज १२, ३८, ८६
दारए=बालक ३५, ८६
दारयं=बालक को ३५
दिन्ना=दी हुई ५१, ५६
दिवसं=दिन ४२[२], ८६[२]
दिसं=दिशा को ७३
दीहदंते=दीर्घदन्त कुमार ८, २०
दीहसेणे=दीर्घसेन कुमार २४, २७
दुतिज्जमाणे=विहार करते हुए
दुमसेणे=द्रुमसेन कुमार २४
दुमे=द्रुम कुमार २४
दुरूहंति=आरोहण करते हैं, चढ़ते हैं ८०

पडिगए=चला गया	७३
पडिगओ=चला गया	६०
पडिगता=चली गई	६०
पडिगया=चली गई	७२
पडिगाहेति=ग्रहण करता है	४६
पडिग्गहित्तते=ग्रहण करने के लिए	४२
पडिणिक्खमति=बाहर निकलता है ४६,४६
पडिदंसेति=दिखाता है	४६
पडिबंधं=प्रतिबन्ध, विघ्न, देरी	४२
पढम-छट्ठ-क्खमण-पारणगंसि=पहले पष्ठ व्रत (वेले) के पारण में	४५
पढमस्स=पहले ८², ११², २०, २४,३४,८१
पढमाए=पहली	४५
पढमे=पहले (अध्ययन) में	२०
पण्णग-भूतेणं=सर्प के समान	४६
पण्ण(न्न)त्ता=प्रतिपादन किये हैं ८⁴, ११, १३, २६, ३२, ८०, ६१
पण्ण(न्न)त्ते=प्रतिपादन किया है, कहा है ३², ११², २०, २४², २७², ३२², ३४, ८१, ६५
पण्णा(न्ना)यंति=पहचाने जाते हैं ५१, ६४²
पत्त-चीवराइं=पात्र और वस्त्रों को	१३
पययया‍ए=अधिक यत्न वाली	४५
परिनिव्वाण-वत्तियं=परिनिर्वाण प्रत्यियिक, किसी की मृत्यु के उपलक्ष्य में किया जाने वाला	१३
परियातो=संयम-वृत्ति या साधु-वृत्ति का पालन	२७, ६०
परिवसइ=रहती है (थी)	३५
परिवसति=रहता है	८६
परिसा=परिषद्, श्रोतृ-गण	३, ३६, ७१, ७२², ६०
पलास-पत्ते=पलाश (ढाक) का पत्ता ५६, ६१
पव्वइते=प्रव्रजित हुआ, साधु-वृत्ति धारण की	७२
पव्वतिते=प्रव्रजित हुआ	३६, ४२, ८६
पव्वयामि=प्रव्रजित होता हूँ, दीक्षा ग्रहण करता हूँ	३६
पव्वाय-वदण-कमले=जिसका कमलरूपी मुख मुरझा गया था	६७
पाउणित्ता=पालन कर	१२,१३
पाउब्भूते=प्रकट हुआ	७३
पांसुलि-कडएहिं=पसलियों की पंक्ति से ६७
पांसुलिय-कडाणं=पार्श्वभाग की अस्थियों (हड्डियों) के कटकों की	५५
पाणं=पानी	४५²
पाणावली=पाण—एक प्रकार के वर्तनों की पंक्ति	५५
पाणि=हाथ	३८
पात-जंघोरुणा=पैर, जङ्घा और ऊरुओं से ६७
पादाणं=पैरों की	५१, ७२
पाभातिय-तारिगा=प्रातःकाल का तारा	६४
पायंगुलियाणं=पैरों की अँगुलियों की	५१
पायंगुलियातो=पैरों की अँगुलियाँ	५१
पाय-चारेणं=पैदल	३६
पाया=पैर	५१
पारणयंसि=पारण करने पर, पारण के समय	४२
पासायवडिं(डें)सए, ते=श्रेष्ठ—सर्वोत्तम महल में	१२, ३७, ३८, ७२, ८६
पि=भी	४२³
पिट्ठि-करंडग-संधीहिं=पृष्ठ-करण्डक (पीठ के उन्नत प्रदेशों) की सन्धियों से	६७
पिट्ठि-करंडयाणं=पीठ की हड्डियों के उन्नत प्रदेशों की	५५
पिट्ठि-मवस्सिपणं=पीठ के साथ मिले हुए ६७
पिट्ठि-माइया=पृष्ठिमातृक कुमार	३२

मंस-सोणियत्ताए=मांस और रुधिर के कारण ५१, ६४
मग्ग-दएणं=मुक्ति-मार्ग दिखाने वाले ६४
मज्झे=बीच में ३७
ममं=मेरा १३
मयालि=मयालि कुमार ८
मयूर-पोरा=मोर के पर्व (सन्धि-स्थान) ५३
महता=बड़े भारी (समारोह से) ३६
महब्बले=महाबल कुमार, जिसका वर्णन 'भगवती सूत्र' में किया गया है ३५, ३६
महा-णिज्जरतराए=बड़े कर्मों की निर्जरा करने वाला ७२[३]
महा-दुक्कर-कारए=अत्यन्त दुष्कर तप करने वाला ७२[३]
महादुमसेणमाती=महाद्रुमसेन आदि २७
महादुमसेणे=महाद्रुमसेन कुमार २४
महाविदेहे=महाविदेह (क्षेत्र) में १३, ८०, ६१[२]
महावीरं=धर्म के प्रवर्तक श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को ४२, ७२,७३[२]
महावीरस्स=श्री महावीर स्वामी का ४६, ७३, ८६
महावीरे=श्री महावीर स्वामी ३६, ४६, ७१
महावीरेणं=श्री महावीर से ४३, ६४
महासीहसेणे=महासिंहसेन कुमार २४
महासेणे=महासेन कुमार २४
मा=नहीं, निषेधार्थक अव्यय ४२
माणुस्सए=मनुष्य सम्बन्धी ७३
मातुलुंग-पेसिया=मातुलुङ्ग-बीजपूरक की फाँक ६३
माया,ता=माता २०, २७
मासं=एक मास
मास-संगलिया=माष-उड़द की फली ५१,५६
मासिया=एक मास की ८०
मिलायमाणी=मुरझाती हुई ५१
मुंडावली=खम्भों की पंक्ति ५५
मुंडे=मुण्डित ४२, ८६
मुग्ग-संगलिया=मूँग की फली ५१, ५७
मुच्छिया=मूर्च्छित ३६
मूला-छल्लिया=मूली का छिलका ६४
मेहो='ज्ञाता धर्मकथाङ्गसूत्र' में वर्णित मेघ कुमार १२[३]
मोक्केणं=स्वयं मुक्त हुए ६५
मोयएणं=दूसरों को संसार-सागर से मुक्ति दिलाने वाले ६५
य=और ८[५], ३२[३], ४२, ८०
रामपुत्ते=रामपुत्र कुमार
रायगिहे=राजगृह नाम का नगर ३, १२, २०, २७, ७१, ६०, ६१[२]
राया=राजा १२, २०, २७, ३५, ७१, ७२, ७३, ६०[३]
रिद्ध(द्धि?)त्थिमिय-समिद्धे, द्धा=धन धान्य से युक्त, भयरहित और सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त १२, ३४
लट्ठदंते=लष्टदन्त कुमार ८, २०
लभति=प्राप्त करता है ४५[२], ४६
लाउय-फले=तुम्बे का फल ६१
लुक्ख=रूक्ष ६४
लोग-नाहेणं=तीनों लोकों के स्वामी ६४
लोग-पज्जोयगरेणं=लोक उद्योतकर (प्रकाशित करने वाले) ६४
लोग-प्पदीवेणं=लोकों में दीपक के समान प्रकाश करने वाले ६४
वंदति=वन्दना करता है ४२, ७२, ७३
वग्गस्स=वर्ग का ८, ११, २०, २४[२] २७[२], ३२[२], ६५
वग्गा ८
वट्टयावली=लाख आदि के बने हुए बच्चों के खिलौनों की पंक्ति ५५

४६, ८०, ६४
समाणी=होने पर ५१, ५६
समाणे=होने पर ४२[२], ४६
समि-संगलिया=शमी वृक्ष की फली ५६
समुदाणं=घरों के समूह से प्राप्त भिक्षा
समोसढे=पधारे, विराजमान हुए १२, ३६, ७१, ६०
समोसरणं=पधारना, तीर्थङ्कर का पधारना ३, ८६
सयं=अपने आप ३६
सयं-संबुद्धेणं=अपने आप बोध प्राप्त करने वाले ६४
सरण-दयणं=शरण देने वाले ६४
सरिसं=समान ६१
सरीर-वन्नओ=शरीर का वर्णन ७२
सल्लति-करिल्ले=शल्य वृक्ष की कोंपल ५३
सव्वट्ठसिद्धे=सर्वार्थसिद्ध विमान में २०[२], २७, ८०[२], ६१[२]
सवत्थ=सर्वत्र, सब के विषय में ६४
सव्वो=सब ७२
सव्वोदुए=सब ऋतुओं में हरा-भरा रहने वाला ३५
सहसंबवणे=सहस्राम्रवन नाम वाला एक बगीचा ३४, ७२
सहसंबवणातो=सहस्राम्रवन उद्यान से ४६
सा=वह ३५
साएए=साकेत पुर में ६१
साग-पत्ते=शाक के पत्ते ६१
सागरोवमाइं=सागरोपम, दश क्रोडाक्रोडी पल्योपम प्रमाण का, काल का एक विभाग जिसके द्वारा नारकी देवता की आयु मापी जाती है १३, ८०, ६१
साम-करील्ले=प्रियङ्गु वृक्ष की कोंपल ५३
सामन्न-परियागं=साधु का पर्याय, साधु का भाव, संयम-वृत्ति १२
सामन्न-परियातो=संयम-वृत्ति २०
सामली-करील्ले=शाल्मली वृक्ष की कोंपल ५३
सामाइयमाइयाइं=सामायिक आदि ४६
सामी=श्री श्रमण भगवान् महावीर स्वामी १२, ६०
साहस्सीणं=सहस्रों में—(सहस्रों का) ७२[२]
सिज्झणा=सिद्धि ६१
सिज्झिहिति=सिद्ध होगा १३, ८०, ६१
सिढिल-कडाली (चिव)=ढीली लगाम के समान ६७
सिण्हालए=सिंस्तालक—सेफालक नामक फल विशेष ६४
सिद्धि-गति-नामधेयं=सिद्धि गति नाम वाले ६५
सिलेस-गुलिया=श्लेष्म की गुटिका ६१
सिवं=कल्याणरूप ६५
सीस=शिर ६४
सीस-घडीए=शिररूपी घट (घड़े) से ६७
सीसस्स=शिर की ६४
सीहसेणे=सिंहसेन कुमार २४
सीहे=सिंह कुमार २४
सीहो=सिंह, शेर १२, २७
सुकयत्थे=सुकृतार्थ ७३
सुक्कं=सूखा हुआ ५५, ६४
सुक-छगणिया=सूखा हुआ गोबर, गोहा ५६
सुक-छल्ली=सूखी हुई छाल ५१
सुक-जलोया=सूखी हुई जोंक
सुकदिए=सूखी हुई मशाक ५५
सुक-सप्प-समाणाहिं=सूखे हुए सर्प के समान ६७
सुका=सूखी हुई, सूखे हुए ५१[२], ५६
सुकातो=सूखी हुई ५१
सुकेणं=सूखे हुए

सुणक्खत्त-गमेणं=सुनक्षत्र के समान ६१
सुणक्खत्तस्स=सुनक्षत्र के ६०
सुणक्खत्ते=सुनक्षत्र कुमार ३२, ८६
सुपुण्णे=अच्छे पुण्य वाला ७३
सुमिणे=स्वप्न में १२, २७
सुरूवे=सुन्दर, अच्छे रूप वाला ३५, ८६
सुलद्धे=अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है ७३
सुहम्मस्स=सुधर्म नाम वाले श्री महावीर स्वामी के पाँचवें गणधर और जम्बू स्वामी के गुरु का ३
सुहम्मे=सुधर्मा स्वामी ८
सुहुय० (सुहुय-हुयासण इव)=अच्छी तरह से जली हुई अग्नि के समान ४९
सुद्धदंते=शुद्धदन्त कुमार २४
१से=वह, उसके ८, १३, ४२, ४५^{2}, ४६^{2}, ४९^{2}, ५१^{2}, ५३^{3}, ५५^{4}, ५९, ६१^{4}, ६३, ६४^{2}, ६७, ७२, ८०^{2}, ८६, ९०
२से=अथ, प्रारम्भ-बोधक अव्यय ७२
सेणिए=श्रेणिक राजा १२, २०, २७, ७१, ७२, ७३, ९०
सेणिओ=श्रेणिक राजा १२, २७
सेणिते=श्रेणिक राजा ७१
सेणिया=हे श्रेणिक ७२^{3}

सेसं=शेष (वर्णन), बाकी २
सेसा=शेष २०, २
सेसाणं=शेष का ९
सेसाणवि=शेष का भी २
सेसावि=शेष भी ९
सोच्चा=सुनकर ७२, ७
सोणियत्ताए,त्ते=रुधिर के कारण ५१ ५३^{3}, ५
सोलस=सोलह १२, २०, २
सोहम्मीसाण=सौधर्म और ईशान नामक पहला और दूसरा देवलोक ७३
हकुब-फले=हकुब—वनस्पति विशेष का फल ६१
हट्ठ-तुट्ठ=प्रसन्न और सन्तुष्ट ४३, ७३
हणुयाए=चिबुक—ठोड़ी की ६१
हत्थंगुलियाणं=हाथों की अँगुलियों की ५९
हत्थाणं=हाथों की ५९
हत्थिणपुरे=हस्तिनापुर में ९१
हल्ले=हल्ल कुमार २४
हुयासणे (इव)=अग्नि के समान ६७
होति=होते हैं २४
होत्था=था, थी ३४, ३५^{2}, ५१, ७२, ८६